नई दिल्ली
रविवार, 29 नवंबर, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-9 अंक-5 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन



Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

ओडिशा ने जिस तरह अडानी के विशाल परमाणु संयंत्रों का चयन किया है, वह गंभीर सवाल 6
कंपनियों का मुनाफा बढ़ा, कामगार जस के तस 3



हिट क्यों लुगदी साहित्य? 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

आपकी निगरानी का दु:स्वप्न अब हक़ीक़त

क्या आपको पेगासस स्पाइवेयर से मचा हंगामा याद है? अब 'सेलेब्राइट' नाम का एक और इसराइली स्पाइवेयर नागरिकों की चिंताएं बढ़ा रहा है

हरजिंदर

फोन अब एक उपकरण भर नहीं है। यह डायरी है, बटुआ है, मन की बातें साझा करने का जरिया है और नाम-पतों, नंबरों की डायरी भी। अगर किसी ने इसकी चाबी हासिल कर ली तो आपकी जिंदगी का हर राज उसके पास होगा। निजी और पेशेवर, दोनों तरह की जिंदगी का। ताजा खबरें बता रही हैं कि सरकार ऐसी ही चाबियों का गुच्छे खरीद रही है।

देश की सरकारी एजेंसियों की ओर से इसराइली कंपनी सेलेब्राइट से अत्याधुनिक डिजिटल फॉरेंसिक टूल खरीदने की खबरों ने राज्य की निगरानी व्यवस्था के एक ऐसे पहलू को सुर्खियों में ला दिया है, जिस पर अब तक बहुत कम नियम-कायदे हैं। इसे कथित तौर पर आपराधिक जांच में मदद के लिए खरीदा गया है। इनके जरिये स्मार्टफोन का लॉक खोला जा सकता है। बड़ी मात्रा में निजी जानकारी निकाली जा सकती है। यहां तक कि ऑनलाइन अकाउंट और क्लाउड आधारित सेवाओं तक भी पहुंच बनाई जा सकती है।

सवाल सिर्फ यह नहीं है कि जांच एजेंसियों को ऐसे उपकरणों की जरूरत है या नहीं। असली सवाल यह है कि इनके इस्तेमाल को नियंत्रित करने के लिए कानून में भरोसेमंद सुरक्षा उपाय हैं या नहीं। क्या जासूसी करने वाले इन सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल की शर्तें और सीमाएं स्पष्ट हैं? या सरकार ने आम नागरिक की निजता में आसानी से सेंध लगाने के अधिकार अपने हाथ में ले लिए हैं?

डिजिटल अधिकार संगठन इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन की एक जांच में सामने आया कि केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने 'मेक इन इंडिया' के नियमों में एक साल की छूट की जो मंजूरी दी थी। इससे विदेश में बने 400 से अधिक फॉरेंसिक उत्पादों की खरीद का रास्ता साफ हुआ। एक दूसरे पत्र के जरिये राष्ट्रीय जांच एजेंसी को करीब पांच करोड़ रुपये के लाइसेंस पर सेलेब्राइट प्रीमियम टूल्स खरीदने की अनुमति दी गई।

टेंडर दस्तावेजों में ऐसे सॉफ्टवेयर की मांग की गई थी, जो फोन का स्क्रीन लॉक तोड़ सकें। फोन से हासिल लॉगिन टोकन का इस्तेमाल कर सौ से अधिक क्लाउड सेवाओं में प्रवेश कर सकें। इनमें वाट्सएप, इंस्टाग्राम और टिंडर जैसी सेवाएं शामिल हैं।

सेलेब्राइट अपनी तकनीक को ऐसे उपकरण के रूप में पेश करती है, जो कानून लागू करने वाली एजेंसियों को डिजिटल उपकरणों से जानकारी हासिल करने में मदद करता है। इसके अत्याधुनिक उत्पाद सुरक्षा प्रणालियों को दरकिनार कर सकते हैं। वे ऐसा डेटा भी निकाल सकते हैं, जिस तक सामान्य तौर पर पहुंच संभव नहीं होती।

आतंकवाद, संगठित अपराध, वित्तीय धोखाधड़ी या बाल शोषण के मामलों की जांच करने वाली एजेंसियों को डिजिटल सबूतों की तलाश करनी ही पड़ती है। समस्या तब शुरू होती है, जब ऐसे संवेदनशील फॉरेंसिक उपकरणों के इस्तेमाल की कानूनी सीमाएं स्पष्ट नहीं होतीं। जब पुलिस और जांच एजेंसियों पर इनके इस्तेमाल को लेकर कोई पाबंदी नहीं होती।

आपराधिक जांच के नाम पर हासिल की गई तकनीकों का इस्तेमाल पहले भी राजनीतिक मकसद से निगरानी के लिए होता रहा है। 2021 में पेगासस जासूसी विवाद ने दिखाया था कि किस तरह पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और विपक्षी नेताओं की निगरानी की जा सकती है। उनके फोन और लैपटॉप में मालवेयर डाला जा सकता है।

केन्द्र सरकार ने इन आरोपों से इनकार किया था। लेकिन एमनेस्टी इंटरनेशनल की फॉरेंसिक जांच ने पुष्टि की थी कि इसराइली कंपनी एनएसओ ग्रुप के स्पाइवेयर पेगासस का इस्तेमाल भारत में पत्रकारों के फोन को संक्रमित करने के लिए किया गया था।

जब सरकारी मशीनरी के पास ऐसी तकनीक मौजूद हो, निगरानी उपकरणों के इस्तेमाल पर कानूनी पाबंदियां स्पष्ट न हों और सरकार असहमति जताने वालों के पीछे पड़ने का रवैया दिखाए, तो चिंता स्वाभाविक है।

हाल में एसआईआर के खिलाफ हुए आंदोलन के दौरान भी कई प्रदर्शनकारियों के फोन पुलिस ने जब्त कर लिए थे। यहां तक कि गवाहों और पत्रकारों के फोन भी नहीं बख्शे गए। किसी फोन को खोलकर उसका डेटा निकालना, वह भी बिना किसी स्पष्ट कानूनी आधार के, सबसे पहले व्यक्ति के निजता के अधिकार का उल्लंघन है।

इसके अलावा, निकाले गए डेटा के उचित इस्तेमाल का फैसला कौन करेगा? यह डेटा कितने समय तक रखा जा सकता है? इसे कौन देख सकता है? और सरकारी रिकॉर्ड से इसे कब हटाया जाएगा?

इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन के कार्यकारी निदेशक अपार गुप्ता कहते हैं, 'फॉरेंसिक साइंस लैबोरेटरी और पुलिस विभाग अब इन उपकरणों का इस्तेमाल सिर्फ उन सक्रिय आपराधिक मामलों की जांच में नहीं कर रहे हैं, जिनमें एफआईआर दर्ज होती है।'

पत्रकारों के लिए इसके नतीजे बेहद गंभीर हो सकते हैं। किसी पत्रकार के फोन में उसके गोपनीय सूत्रों की पहचान हो सकती है। अप्रकाशित खबरें, इंटरव्यू की रिकॉर्डिंग, रिसर्च सामग्री और व्हिसलब्लोअर के साथ बातचीत भी हो सकती है। एनजीओ के फोन में चंदे का ब्योरा, फील्ड स्टाफ की जानकारी, लाभार्थियों का रिकॉर्ड और कानूनी रणनीतियां हो सकती हैं।

एक फोन का डेटा उजागर होना पूरे नेटवर्क को खतरे में डाल सकता है।

हाल की कुछ घटनाओं ने इन आशंकाओं को और बढ़ाया है। यूट्यूबर ध्रुव राठी को लगता है कि पुलिस ने उनके आईफोन का क्लोन बनाने की कोशिश की। वहीं, पत्रकार मोहम्मद असलम हुसैन ने आरोप लगाया है कि दिल्ली में अक्तूबर के प्रदर्शनों के बाद लौटाए गए उनके फोन से चुनिंदा वीडियो फुटेज डिलीट कर दी गई।





शिवेन रामजी (बाएं), जिन्होंने अगस्त 2026 में सेलेब्राइट के सीईओ का पद संभाला। कंपनी का 'स्नूपवेयर' (जासूसी सॉफ्टवेयर) सरकार, उसकी जांच एजेंसियों और पुलिस के निगरानी हथियारों में शामिल सबसे नई चीजों में से एक है

बेलगाम निगरानी लोगों के मन में डर पैदा करती है। पत्रकार संवेदनशील सूत्रों से बातचीत करने से कतराने लग सकते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता प्रदर्शनों का दस्तावेजीकरण करने से बच सकते हैं। आम नागरिक भी सरकार की नीतियों पर सवाल उठाने वाले संगठनों से जुड़ने से पहले कई बार सोचेंगे।

इसके नतीजे राजनीतिक दलों के लिए भी उतने ही गंभीर हैं।

किसी सरकारी एजेंसी के पास अत्याधुनिक डेटा निकालने वाले उपकरण हों और उनके इस्तेमाल पर स्पष्ट सीमाएं न हों, तो उसे ऐसी जानकारी मिल सकती है, जिससे शासक दल को अनुचित राजनीतिक फायदा पहुंचे। किसी राजनीतिक दल के भीतर भी सत्ता से नाराज नेता, फैसलों पर सवाल उठाने वाले मंत्री और असुविधाजनक हो चुके वरिष्ठ नेता सरकारी ताकत के दुरुपयोग का शिकार बन सकते हैं।

2017 में सुप्रीम कोर्ट ने निजता को मौलिक अधिकार माना था। अदालत ने कहा था कि निजता में किसी भी तरह का हस्तक्षेप कानूनी आधार पर होना चाहिए। उसका उद्देश्य वैध होना चाहिए। हस्तक्षेप आनुपात की कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए। इसलिए शक्तिशाली फॉरेंसिक तकनीक की खरीद और उनके इस्तेमाल को इन कसौटियों पर परखना जरूरी है।

वकील वृंदा भंडारी ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि भारत में निगरानी व्यवस्था की समीक्षा मुख्य रूप से सरकार के आंतरिक तंत्र के जरिये होती है। इसके उलट ब्रिटेन और जर्मनी जैसे देशों में संसदीय या न्यायिक निगरानी की व्यवस्था है।

उनका तर्क है कि ऐसी निगरानी का मकसद 'निगरानी की प्रक्रिया में बाधा पैदा करना' है। यह बाधा जरूरी है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि निजी जानकारी तक पहुंचने की ताकत का इस्तेमाल मनमाने ढंग से न हो।

यह मामला सिर्फ व्यक्तिगत अधिकारों तक सीमित नहीं है। जिस समाज में नागरिकों को हर वक्त यह डर रहे कि उन पर नजर रखी जा रही है, वहां लोग खुद ही अपनी अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाने लगते हैं। ऐसे माहौल में मजबूत लोकतांत्रिक भागीदारी की कल्पना करना मुश्किल है।

अपार गुप्ता इस तकनीक के संभावित असर को कुछ इस तरह समझाते हैं, 'कल्पना कीजिए कि कानून लागू करने वाली एजेंसियों के पास हर जगह आपकी गतिविधियों तक पहुंचने का एक रिमोट एक्सेस हो। आप किसे पसंद करते हैं, किससे बात करते हैं, किससे दूरी बनाते हैं, आपकी लोकेशन, आपकी सर्च हिस्ट्री और सब कुछ! वे सिर्फ आपका डेटा निकाल ही नहीं रहे, आपकी चल रही बातचीत भी सुन सकते हैं। क्या यह आपको डराता नहीं है?'

जांच को तेज और प्रभावी बनाने की जरूरत जवाबदेही से बचने का बहाना नहीं हो सकती। इसके लिए एक स्पष्ट कानूनी ढांचा जरूरी है। यह तय होना चाहिए कि किन परिस्थितियों में किसी का फोन खोला जा सकता है। डेटा निकालने से पहले न्यायिक अनुमति अनिवार्य होनी चाहिए। तलाशी को जांच से जुड़ी जानकारी तक सीमित रखा जाना चाहिए। डेटा को कितने समय तक सुरक्षित रखा जाएगा और कब उसे मिटाना होगा, इसकी भी सख्त समयसीमा तय होनी चाहिए।

इसके अलावा, स्वतंत्र निगरानी और संसदीय समीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। जिनका डेटा निकाला गया है, उन्हें इसकी जानकारी दी जानी चाहिए। बशर्ते इससे जांच प्रभावित न होती हो।

सुप्रीम कोर्ट को एक बड़े सवाल पर भी फैसला करना चाहिए। यह सवाल सरकार की उन शक्तियों की कानूनी सीमाओं से जुड़ा है, जिनके तहत वह किसी कंप्यूटर संसाधन में तैयार, प्रसारित, प्राप्त या संग्रहित जानकारी को इंटरसेप्ट, मॉनिटर या डिक्रिप्ट कर सकती है।

इन शक्तियों को चुनौती देने वाली इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन की 2019 की याचिका अब भी सुप्रीम कोर्ट में लंबित है। सरकार जब निजी डेटा तक पहुंचने के लिए बेहद उन्नत तकनीक हासिल कर रही है, तब इस याचिका पर फैसला और भी जरूरी हो गया है। ■

जब स्नूपवेयर के उपयोग पर कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं होगा, तो इसका दुरुपयोग किया जा सकता है और संभवतः किया भी जाएगा

एसआईआर का कभी न खत्म होने वाला तमाशा

ए.जे. प्रबल

भारत का चुनाव आयोग मतदाता सूची में भारी गड़बड़ियां कर सकता है। यहां तक कि तथाकथित 'सघन पुनरीक्षण' के बाद भी। लेकिन मतदाता को वही सटीक दस्तावेज़ पेश करने पड़ते हैं जो आयोग मांगता है। साथ ही, उसे नामों में वर्तनी की गलती, भाषाई त्रुटियां और ऐसे खराब सॉफ़्टवेयर जैसी समस्याओं से भी जूझना पड़ता है, जो मानो लोगों को वोटर लिस्ट से बाहर करने के लिए ही डिज़ाइन किया गया हो।

2002 की मतदाता सूची में नाम में वर्तनी की गलती, पिता का जन्म प्रमाण पत्र न दिखा पाना, सुनवाई में शामिल न हो पाना, डिजिटल सुविधाओं तक पहुंच का न होना और ऐसी ही अन्य 'गलतियों' के कारण लोगों के नाम मतदाता सूची से हटा दिए गए हैं। बेंगलुरु के डिज़ाइनर, डेवलपर और डेटा जर्नलिस्ट अमन भार्गव पूछते हैं कि चुनाव आयोग जो मानक मतदाताओं पर लागू करता है, उनपर खुद खरा क्यों नहीं उतरता? अमन एक ओपन-सोर्स डेटा जर्नलिज़्म पब्लिकेशन 'डायग्राम चेज़िंग' के सह-संस्थापक हैं; जो भारत में सार्वजनिक डेटा का विश्लेषण करता है।

अपनी वेबसाइट diagramchasing.fun पर, भार्गव ने चुनाव आयोग द्वारा एसआईआर के संबंध में साझा किए गए डेटा का विश्लेषण किया है। 24 नवंबर को, वेबसाइट ने 10 अप्रैल 2026 को उत्तर प्रदेश के लिए जारी की गई अंतिम एसआईआर सूची को लेकर अपने निष्कर्ष बताए।

15 अक्तूबर को, आयोग ने अपने अधिकारियों से मशीन-रीडेबल (कंप्यूटर द्वारा पढ़ी जा सकने वाली) डेटा राजनीतिक दलों के साथ साझा करने को कहा था। लेकिन, 17 नवंबर को जारी की गई चल रही 'विशेष सारांश पुनरीक्षण' (एसएसआर) की केवल ड्राफ्ट सूची ही इस तरह के 'खोजने योग्य' (सर्च करने योग्य) फॉर्मेट में उपलब्ध है। 2024 की मतदाता सूची, और जनवरी तथा अप्रैल 2026 में जारी की गई एसआईआर की ड्राफ्ट और अंतिम सूचियां अब भी पीडीएफ इमेज फॉर्मेट में ही हैं, जिनमें कुछ भी खोज पाना टेढ़ी खीर है।

'डायग्रामचेसिंग.फन' ने पाया कि अप्रैल की एसआईआर अंतिम सूची में, जनवरी 2026 के ड्राफ्ट सूची से 58,800 मतदाताओं को हटाए जाने के बावजूद, अंतिम सूची में अब भी कम-से- कम 18,500 'डुप्लिकेट' मतदाता मौजूद थे; 1,757 एपिक (EPIC) नंबर दो अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों में दर्ज हैं; उत्तर प्रदेश में 17 लाख मतदाताओं के पते गायब हैं, जबकि 7.2 लाख मतदाताओं ने अपने पते के रूप में महज़ 'यूपी' या 'गांव' लिख रखा है!

यह एसआईआर (जिसकी कई बार समय-सीमा बढ़ी) असल में वैध लोगों के नाम मतदाता सूची से हटाने पर इस कदर केन्द्रित था कि लगता है, इस चक्कर में पात्र मतदाताओं को सूची में शामिल करना ही भूल गया। यूपी के मुख्य निर्वाचन अधिकारी नवदीप रिणवा ने 17 नवंबर को स्वीकार किया कि अप्रैल की सूची में ईपी अनुपात (मतदाताः वयस्क आबादी) बहुत ही कम, यानी 55.17 प्रतिशत था, और 17 नवंबर की ड्राफ्ट एसएसआर सूची में भी यह बस थोड़ा ही ज्यादा (55.95 प्रतिशत) रहा। 2020 में आई 'भारत और राज्यों के लिए जनसंख्या अनुमान पर तकनीकी समूह की रिपोर्ट (2011-2036)' के अनुसार, 2026 में राज्य की वयस्क आबादी 16.16 करोड़ होने का अनुमान लगाया गया था।

यह एक चौंकाने वाला खुलासा था, क्योंकि 2024 में एसआईआर (विशेष पुनरीक्षण) से पहले राष्ट्रीय मतदाता और वयस्क आबादी(ईएपी) अनुपात 97 प्रतिशत था, और निर्वाचन आयोग का काम यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी पात्र मतदाता छूट न जाए। फिर भी, राज्य के शीर्ष चुनाव अधिकारी ने स्वीकार किया कि 2.58 करोड़ लोग, जो जीवित हैं और पात्र भी हैं, राज्य की मतदाता सूची से गायब थे। अप्रैल 2026 की एसआईआर अंतिम सूची में 13.39 करोड़ मतदाता थे, जबकि नवंबर की एसएसआर ड्राफ्ट सूची में 13.58 करोड़ मतदाता।

और भी दिलचस्प बात यह है कि 17 नवंबर को जारी सीईओ के प्रेस नोट में बताया गया कि एसआईआर की अंतिम सूची में 18-19 साल के मतदाताओं की संख्या 17.63 लाख थी, लेकिन एसएसआर की ड्राफ्ट सूची में यह संख्या घटकर 11.83 लाख रह गई! रिणवा का तर्क है कि इन दोनों आंकड़ों के बीच 5.8 लाख का यह अंतर इसलिए आया क्योंकि अप्रैल से नवंबर के बीच ये मतदाता 18-19 साल वाले आयु वर्ग से बाहर हो चुके थे।

*

उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रभारी राजेंद्र पाल गौतम ने 21 अक्तूबर को मतदाताओं के नामों के साथ छेड़छाड़ का हवाला देते हुए एक और चिंता जताई। उन्होंने कहा, "अगर किसी मतदाता ने अप्रैल में जारी अंतिम ड्राफ्ट में अपना नाम, पता, एपिक नंबर और सीरियल नंबर देख लिया होगा, तो वह यही मानेगा कि उसका वोट सुरक्षित है। लेकिन अगर उसके एपिक नंबर के सामने वाला नाम बाद में बदल दिया गया हो, तो मतदान के दिन उसे यह यह टका सा जवाब मिल सकता है कि उसका नाम तो सूची में है ही नहीं, भले ही उसके पास एपिक कार्ड मौजूद हो!"

गौतम का दावा है कि पीलीभीत सदर विधानसभा क्षेत्र के कुछ बूथों पर ऐसा ही हुआ है। उनके अनुसार, वहां 13,150 मतदाताओं के नाम बदल दिए गए, 884 नाम हटा दिए गए (जबकि वे अब भी वहीं रहते हैं), और ऐसे 2,600 लोगों के नाम जोड़ दिए गए जो उस इलाके में रहते ही नहीं हैं।

शेष पेज 2 पर ▸



एसआईआर के तुरंत बाद लगातार चल रहे एसएसआर से भी इसकी कोई उम्मीद नहीं है कि हमें ऐसी मतदाता सूची मिल पाएगी जिस पर नागरिक भरोसा कर सकें

एसआईआर के बाद हो रही एसएसआर प्रक्रिया के बीच भी मतदाता सूचियां बेतुकी गलतियों से भरी पड़ी हैं

राज्य 360° पंजाब

चुनावी मौसम में 'दुश्मन' फिर बने दोस्त

हरजेश्वर पाल सिंह

पंजाब के ग्रामीण इलाकों में कहावत है कि रिश्तेदारों का झगड़ा परिवार में होने वाली अगली शादी तक ही चलता है। कुछ इसी तर्ज पर इस गुरुपर्व अमित शाह और सुखबीर बादल ने नई दिल्ली में भाजपा मुख्यालय में हाथ मिलाया, जो अकाली दल के एनडीए में वापसी का संकेत है। यह सब कृषि कानूनों के विरोध में हरसिमरत कौर बादल के मोदी कैबिनेट से बाहर निकलने के छह साल बाद हुआ।

यह भी कहा जाता है कि पंजाब की राजनीति में फोटो एल्बम यादों की तुलना में ज्यादा अहम होता है। शाह और बादल के साथ एक ही फ्रेम में रवनीत बिट्टू की मौजूदगी इस मायने में अहम है, जो कुछ समय पहले ही कह रहे थे कि भाजपा, नशीले पदार्थों और बेअदबी के बोझ से दबे अकाली दल का बोझ नहीं ढो पाएगी।

हैरानी शाह की उदारता पर है, जिन्होंने कहा कि अकाली दल ही 'बड़ा भाई' बना रहेगा। यह भी कहा कि जिन कृषि कानूनों की वजह से अकाली दल ने एनडीए छोड़ दिया था, अब उनका कोई मतलब नहीं है क्योंकि वे रद्द किए जा चुके हैं। सुखबीर ने इसे "महज़ एक राजनीतिक गठबंधन नहीं, भावनात्मक रिश्ता" बताया। उन्होंने अपने पिता के वाजपेयी और आडवाणी के साथ रिश्तों का हवाला दिया और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के 8 दिसंबर को प्रकाश सिंह बादल की जयंती पर मोगा आने की घोषणा की। दोनों पक्ष हिन्दू-सिख भाईचारे, नशीले पदार्थों और नौकरियों के बारे में बात करते दिखे। यह 1996 वाला वही पुराना 'पंजाब, पंजाबी, पंजाबियत' का फॉर्मूला था, जो एक नए दौर के लिए फिर से सामने लाया गया।

लेकिन बारीकियां भी देखनी होंगी। सीट-शेयरिंग का कोई फॉर्मूला सामने नहीं आया है। जानकारों का का कहना है कि भाजपा 46 या 47 सीटें चाहती है, जो बादल के दौर में लड़ी गई 23 सीटों से दोगुनी हैं और जिसके बाद अकाली दल के पास 60 से कुछ ज़्यादा सीटें ही बचेंगी। 1997 में तो भाजपा एक 'बाराती' की भूमिका से ही खुश थीः बैठने को अच्छी जगह, खाने को ढेर सारे पकौड़े, लेकिन मेन्यू में दखल नहीं। इस बार वह सीधे रसोई में घुसकर खाना पकाने में हाथ बटा रही है। हालांकि, यह राह आसान नहीं होगी, क्योंकि 2022 की 117 सदस्यों वाली विधानसभा में अकाली दल ने तीन सीटें जीती थीं, जबकि भाजपा को सिर्फ दो सीटें मिली थीं।

कागज़ पर देखें तो आंकड़े जुड़कर, 2024 में लगभग 18.6 और 13.4 प्रतिशत वोट शेयर, यानी कुल मिलाकर करीब 32 प्रतिशत, कांग्रेस और आप, दोनों से आगे निकलते हैं।

हालांकि, गणित और रसायन विज्ञान में बहुत अंतर है। शाह भले ही आज कृषि कानूनों को अप्रासंगिक बता रहे, लेकिन मालवा वाले पुरानी बातें जल्दी भूलते नहीं। भाजपा के पुराने नेताओं को डर है कि उन्हें दो तरफ से दरकिनार किया जा सकता है, एक तो अकाली दल की तरफ से, और दूसरे उन दलबदलुओं की तरफ से जो टिकट पाने की कतार में हैं। फिर भी, यह गठबंधन शिरोमणि अकाली दल और भाजपा, दोनों के लिए एक राहत की बात होगी। शिरोमणि अकाली दल जहां अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रहा है, वहीं भाजपा राज्य में कुछ खास कर नहीं पा रही थी। ऐसे में 2027 का मुकाबला सत्ताधारी आप, कांग्रेस और शिरोमणि अकाली दल-भाजपा गठबंधन के बीच यानी त्रिकोणीय होने के आसार हैं।

> शाह भले ही कहें कि कृषि कानून अब अप्रासंगिक हो गए हैं, लेकिन मालवा के गांवों में लोगों को पुरानी बातें अब भी अच्छी तरह याद हैं



आने वाले पंजाब विधानसभा चुनावों के लिए गठबंधन की घोषणा करते सुखबीर बादल और अमित शाह, साथ में अन्य नेता

*

पिछले हफ्ते, बाबा बकाला तहसील का शांत गांव कुछ घंटों के लिए पंजाब की राजनीति का केन्द्र बना रहा। जेल में बंद खदूर साहिब से सांसद अमृतपाल सिंह अपनी दादी माता चरण कौर के अंतिम संस्कार के लिए कस्टडी पैरोल पर डिब्रूगढ़ से यहां लाए गए। साढ़े तीन साल में यह उनका पंजाब का पहला दौरा था। उन्होंने अपने परिवार को गले लगाया, ट्रैक्टर-ट्रॉली में बैठकर श्मशान घाट तक गए और फिर एक बुलेटप्रूफ गाड़ी में वापस अमृतसर एयरपोर्ट ले जाए गए। नेशनल टीवी चैनलों ने एक-एक पल कुछ इस तरह दिखाया, मानो कोई बड़ा स्टार छोटी सी भूमिका (कैमियो) निभाने के लिए उड़कर आ गया हो।

ज़मीनी हक़ीक़त कुछ अलग थी। वहां मौजूद पत्रकार गुरशमशेर सिंह के अनुसार, भीड़ लगभग 5,000 लोगों की थी। तीन एकड़ में फैला पंडाल आधा खाली रह गया। ज्यादातर लोग स्थानीय इकाइयों द्वारा बसों में भरकर लाए गए थे। कभी उनकी 'खालसा वहीर' में भारी संख्या में उमड़ने वालों की संख्या बहुत कम थी। यहां उस 'संगत' वाली स्वाभाविक सहजता नदारद थी, जिसे लगता कि उसके साथ अन्याय हुआ है। खालिस्तान के कोई नारे भी नहीं लगे। आयोजकों ने शांत रहने को कहा और लोगों ने बात मान ली। 2023 में अजनाला पुलिस स्टेशन पर धावा बोलने वाला वह उग्र नेता अब कानून का पालन करने वालों का नेतृत्व कर रहा है, जो तिरंगे के रंग में रंगे लोहे के जंगलों के पीछे बैठकर शोक मना रहे थे।

इसके तीन सबक हैं। पहला, संगठन। जिस पार्टी ने अपने नेता को मुख्यमंत्री पद का चेहरा घोषित कर रखा हो, वह उनके अपने ही गांव में, वह भी एक बेहद भावुक मौके पर पंडाल का महज आधा हिस्सा ही भर पाई। 'पंथक' वोट किसी मजबूत किले की तरह नहीं, बल्कि उस व्यस्त रेलवे प्लेटफॉर्म जैसे हैं, जहां कोई बड़ी ट्रेन आती है तो भीड़ हो जाती है, और उसके जाते ही वह फिर खाली हो जाता है।

दूसरा, स्क्रीन (मीडिया/सोशल मीडिया) और ज़मीनी हकीकत के बीच का अंतर। 'अमृतपाल फैक्टर' हक़ीक़त है, लेकिन इसका असर मुख्य रूप से ग्रामीण माझा और पश्चिमी मालवा के इलाकों तक ही सीमित है। यहां के युवा जट्ट सिख पुरुषों और उन माताओं के बीच उसे एक ऐसे इंसान के रूप में देखा जाता है जिसने 'चिट्टा' (नशे) के खिलाफ लड़ाई लड़ी। लेकिन इस दायरे से बाहर एक अदृश्य दीवार आज भी कायम है।

तीसरा, नया समीकरण। अमित शाह द्वारा कृषि कानूनों को "अब अप्रासंगिक" घोषित किए जाने के बाद, 'वारिस पंजाब दे' उन पंथक मतदाताओं का स्वाभाविक ठिकाना बन गया है, जो बादल और भाजपा की नज़दीकी (गले मिलना) गले नहीं उतार पा रहे। सुखबीर यह बात समझते हैं, इसीलिए वे इस संगठन को सिख वोटों को बांटने वाला "वायरस" कहते हैं। वहीं भाजपा के लिए, किसी कट्टरपंथी उपदेशक की प्राइम-टाइम पर दिखने वाली हर तस्वीर शहरों में हिन्दू वोट एकजुट करने के काम आती है; और दिल्ली के एंकर एक ऐसा ड्रामा दिखा देते हैं, जो असल में वहां मौजूद भीड़ ने प्रस्तुत ही नहीं किया था।

ऐसे में माहौल तो है, पर कोई 'जत्थेबंदी' (संगठित ढांचा) नहीं है। जब तक 'वारिस पंजाब दे' ऐसा कोई संगठन नहीं बना लेता, इसके नेता के दौरे दिल्ली में भले सुर्खियां बटोरें, पंजाब में उनके कार्यक्रमों का यही हाल रहेगा कि पंडाल आधे खाली ही रहेंगे।

*

चार साल की 'कुर्सी की राजनीति' के बाद, कांग्रेस फिर 'सड़क की राजनीति' पर उतरी है। 4 नवंबर को संगरूर में राहुल गांधी की 'इंसाफ रैली' के बाद शुरू हुए 'पंजाब मंगदा इंसाफ' अभियान के तहत, चरणजीत सिंह चन्नी ने चमकौर साहिब से खन्ना तक 'जवानी संभाल' साइकिल यात्रा शुरू की, जो आठ दिनों में 27 विधानसभा क्षेत्रों से गुजरकर लगभग 625 किलोमीटर चली। पंजाब कांग्रेस प्रमुख परगट सिंह ने बस का सफर चुना, तो राजा वड़िंग भी पीछे नहीं रहे और पैदल 'इंसाफ मार्च' निकालने की घोषणा की।

यह सब बहुत कुछ कहता है। समराला, खन्ना, लुधियाना, कोटकपूरा और फरीदकोट में साइकिल यात्रा को लेकर लोगों में काफी उत्साह दिखा। गांवों में यह उत्साह जरूर कुछ कम था। चन्नी लुधियाना से गुजरे तो वारिंग वहां नहीं आए, लेकिन आखिरी दिन बीजा में पहुंचे और उनके साथ 14 किलोमीटर तक साइकिल भी चलाई। एकदम किसी बॉलीवुड फिल्म के क्लाइमैक्स की तरह। ■

हरजेश्वर पाल सिंह चंडीगढ़ के सेक्टर 26 स्थित एसजीजीएस कॉलेज में इतिहास पढ़ाते हैं और 'पंजाब थिंकस' के संपादक हैं

एसआईआर का कभी न खत्म होने वाला तमाशा

पेज एक का शेष

गौतम एपिक नंबर 4G-MCM-4746 का हवाला देते हैं, जो 35 वर्षीय मोहम्मद यूसुफ के नाम के आगे दर्ज था, लेकिन बाद में यही नंबर रमज़ान अली के बेटे हसरत (जो खुद भी 35 साल का है) के नाम के आगे भी दर्ज दिखाई दिया।

इस बार आयोग इस दावे को गलत या बेबुनियाद बताकर खारिज नहीं कर सका, और 31 अक्तूबर को रिणवा ने ईआरओ मयंक गोस्वामी और हेमंत चौधरी को तत्काल निलंबित करने का आदेश दिया। इससे पहले, पीलीभीत में लॉगिन क्रेडेंशियल्स के कथित दुरुपयोग की शिकायतों के बाद, उन्होंने जिला चुनाव अधिकारियों को निर्देश दिया था कि वे राज्य भर के वोटर रजिस्ट्रेशन सेंटरों पर मौजूद कंप्यूटर सहायकों की ECINET पोर्टल ID को डीएक्टिवेट कर दें। तो क्या इसे 'घोड़ों के भाग जाने के बाद अस्तबल का दरवाजा बंद करने' जैसा मामला न माना जाए?

चुनाव आयोग ने बाद में एक बयान में अपनी जांच के हवाले से माना कि विधानसभा क्षेत्र 127 (पीलीभीत) के मतदाता पंजीकरण केन्द्र के कंप्यूटर ऑपरेटर ने, जैसा कि 'द हिन्दू' ने रिपोर्ट किया, मतदाता विवरण अपडेट करने के लिए 31 मई 2026 से 29 अगस्त 2026 के बीच 13,779 'फॉर्म-8' दर्ज किए थे। हालांकि, रिकॉर्ड में इन प्रविष्टियों से जुड़ा कोई भी 'फॉर्म-8' नहीं मिला। इससे पुष्टि होती है कि कांग्रेस की शिकायत के बाद चुनाव आयोग ने जांच की और शिकायत को सही पाया।

*

डरावनी कहानियों का सिलसिला थम नहीं रहा है। 20 नवंबर को, कोलकाता स्थित रिसर्च और पॉलिसी एडवोकेसी समूह सबर इंस्टीट्यूट ने उत्तर प्रदेश में एसआईआर पर डेटा-आधारित विश्लेषण जारी किया। रिपोर्ट की शुरुआत ही बताती है कि उत्तर प्रदेश के एसआईआर ड्राफ्ट लिस्ट से हटाए गए 84 प्रतिशत मतदाता अब भी जीवित हैं। 'हर 100 में से केवल 16 लोगों को इसलिए हटाया गया क्योंकि उनकी मृत्यु हो चुकी थी। हटाए गए लोगों में से (2.4 करोड़) लोगों को 'स्थायी रूप से स्थानांतरित', 'पता नहीं चला', 'अनुपस्थित' या 'अन्यत्र पंजीकृत' के रूप में चिह्नित किया गया था।'

रिपोर्ट में आगे कहा गया है, '403 विधानसभा सीटों में से 359 सीटों पर, बिना मृत्यु के हटाए गए नामों की संख्या 2022 के जीत के अंतर से अधिक है। केवल 'पता न चलने वाले/अनुपस्थित' श्रेणी के तहत हटाए गए नामों की संख्या ही, जो पूरी तरह से बूथ अधिकारी के फैसले पर निर्भर करती है, 194 निर्वाचन क्षेत्रों में जीत के अंतर से ज्यादा है।'

21 और 23 नवंबर 2026 को प्रकाशित आंख खोलने वाली दो रिपोर्टों में ('व्हाट डिड यूपी एसआईआर अचीव' और 'जेम्स ऑफ यूपी एसआईआर' शीर्षक के तहत), 'ऑल्टन्यूज़' ने इस पूरी कवायद की धज्जियां उड़ाते हुए राज्य की मतदाता सूचियों में मौजूद भारी विसंगतियों का चिट्ठा खोल दिया। फैक्ट-चेकिंग करने वाले इस ठिकाने ने 35,000 से अधिक ऐसे मतदाताओं की पहचान की, जिनकी उम्र उनके माता-पिता की उम्र के बराबर थी।75,000 से अधिक ऐसे मतदाता मिले, जिनके माता-पिता उम्र में उनसे छोटे हैं... रिपोर्ट में आगे बताया गया है कि '87 साल के एक व्यक्ति के पिता की उम्र 23 साल है, 123 साल की एक महिला की मां 45 साल की हैं। दो ऐसी महिलाएं भी हैं जो एक-दूसरे की मां के रूप में दर्ज हैं'।

17 नवंबर 2026 को एसएसआर ड्राफ्ट रोल जारी होने के एक दिन बाद, 'ऑल्टन्यूज़' के सह-संस्थापक मोहम्मद ज़ुबैर ने उत्तर प्रदेश के सीईओ को एक महत्वपूर्ण संदेश भेजा। ज़ुबैर ने X पर लिखा, "मैंने कहा था कि विकास के पास 13 वोटर आईडी हैं। हमसे गलती हो गई। असल में विकास के पास 17 वोटर आईडी थीं। हमने गिनती कम बताई थी। हाल ही में जारी एसएसआर ड्राफ्ट रोल में, उसकी 17 वोटर आईडी (एसआईआर फाइनल लिस्ट से) में से 11 को दूसरे वोटरों को 'बांट' दिया गया, 4 आईडी हटा दी गईं, और 2 आईडी अब भी उसके नाम पर हैं। हमने अपनी गिनती ठीक कर ली है। आप अपनी गिनती कब ठीक करेंगे?" ■

जेल में भी गैरबराबरी

क्या भारत की जेलों में गरीबों के लिए कुछ और साधन संपन्न लोगों के लिए कुछ और नियम-कायदे हैं?

के. ए. शाजी

तमिलनाडु के दक्षिणी थेनी जिले की थेक्कमपट्टी उप-जेल से 17 विचाराधीन बंदी 26 अक्तूबर को फरार हो गए। रिपोर्ट बताती हैं कि इस घटना को बेहद आसानी से अंजाम दिया गया। एक बंदी ने मिर्गी का दौरा पड़ने का नाटक किया और उसके साथियों ने मदद के लिए शोर मचाया। जैसे ही एक सुरक्षाकर्मी कोठरी के भीतर गया, बंदियों ने उसे काबू कर लिया। अन्य ने जेलकर्मियों पर हमला किया और मेन गेट से बाहर निकल गए।

पुलिस टीमों और ड्रोनों की मदद से चले दो दिवसीय तलाशी अभियान के बाद सभी 17 बंदियों को आखिरकार पकड़ लिया गया। नौ जेलकर्मियों को निलंबित किया गया। राज्य के जेल महानिदेशक ने इस घटना को गंभीर मानवीय चूक और नियमों का उल्लंघन बताया।

मदुरै के कानूनी विशेषज्ञ और मानवाधिकार कार्यकर्ता हेनरी तिफग्ने कहते हैं, 'राज्य सरकार दावा कर रही है कि उसने केवल थेक्कमपट्टी ही नहीं बल्कि राज्य भर की जेलों में सुधारात्मक उपाय शुरू कर दिए हैं। लेकिन वार्डरों को निलंबित करने से उन बुनियादी सवालों का हल नहीं निकलता। एक ही कोठरी में 18 रिमांड कैदियों को बंद ही क्यों किया गया था? और जेल की सुरक्षा इतनी ढीली क्यों थी? राज्य की सुधार प्रणाली की व्यवस्था को सुधारने के लिए इन सवालों के जवाब मिलने चाहिए।'

जेल विभाग के आंकड़ों के अनुसार, थेक्कमपट्टी उप-जेल की अधिकृत क्षमता 200 बंदियों की थी, लेकिन फरारी की रात वहां 334 बंदी थे। पुलिस रिपोर्ट पुष्टि करती है कि ड्यूटी पर चार सुरक्षाकर्मी थे, वॉचटॉवर पर पहरेदार नहीं था और मुख्य द्वार पर भी कोई तैनात नहीं था।

तिफग्ने कहते हैं, 'ये सुरक्षा की कोई ऐसी खामियां नहीं थीं जिन्हें पकड़ने के लिए महंगी तकनीक की जरूरत पड़ती। ये ऐसी प्राथमिक प्रशासनिक लापरवाहियां थीं जो किसी भी जेल में कभी नहीं होनी चाहिए थीं।'

यह कोई अकेली घटना नहीं। 22 अक्टूबर को चेन्नई की पुझल जेल से 24 घंटे के भीतर दो अलग-अलग घटनाओं में दो बंदी फरार हो गए। एक विचाराधीन बंदी ने वॉचटॉवर पर सुरक्षाकर्मियों की पारी बदलने के दस मिनट के अंतराल का फायदा उठाया और केबल के सहारे 23 फुट ऊंची दीवार फांद गया (बारिश के कारण जेल की बिजली वाली बाड़ बंद थी)। दूसरा बंदी, जिसे जेल द्वारा संचालित बाजार में तैनात किया गया था, ग्राहकों की भीड़ में घुल-मिलकर निकल गया। इस मामले में सात कर्मियों को निलंबित किया गया।

3 नवंबर को, कोयंबटूर जेल के दोहरे प्रवेश द्वार से ले जाते समय एक रिमांड बंदी उस समय भाग निकला, जब उसकी हथकड़ी खोली गई थी। यह सब थेनी की घटना के बाद बढ़ाई गई सुरक्षा के दावों के बावजूद हुआ। यह सिलसिला एक सुरक्षा चूक से सबक लेकर दूसरी चूक रोकने में तंत्र की चिंताजनक लाचारी को उजागर करता है।

अक्तूबर में दर्ज विभागीय आंकड़ों के अनुसार, तमिलनाडु के जेल प्रशासन के पास 125 जेलों के संचालन के लिए 5,489 स्वीकृत पद हैं। इनमें से लगभग 10 प्रतिशत पद खाली थे, जबकि अन्य रिपोर्टों में यह कमी 15 प्रतिशत तक बताई गई है। जेलकर्मियों को अक्सर हिरासत से इतर अन्य कामों में भी लगा दिया जाता है।

मुट्ठी भर सुरक्षाकर्मी सैकड़ों बंदियों पर नजर नहीं रख सकते, न सुरक्षा संभाल सकते हैं, न उनकी आवाजाही पर पहरा दे सकते हैं और न मानवीय व्यवहार सुनिश्चित कर सकते हैं। समस्या केवल कर्मचारियों की कमी की नहीं, बल्कि उस प्रशासनिक ढांचे की है जिसने कर्मचारियों की इस कमी को सामान्य मान लिया है।

क्षमता से अधिक बंदियों का बोझ इस संकट को और गहरा देता है। मद्रास हाईकोर्ट के समक्ष पेश आंकड़ों से पता चला कि 2 सितंबर को पुझल-II जेल में 2,000 की अधिकृत क्षमता के मुकाबले 3,493 बंदी बंद थे, यानी क्षमता से 174.7 प्रतिशत अधिक। मदुरै सेंट्रल जेल में 1,612 की क्षमता के मुकाबले 2,665 बंदी थे (165.3 प्रतिशत)। कोयंबटूर जेल में 2,124 की जगह 2,692 बंदी थे, जबकि कुड्डालोर में 723 की क्षमता के मुकाबले 1,046 बंदी थे।

ये आंकड़े केवल जगह की तंगी भर नहीं दर्शाते। क्षमता से अधिक बंदियों के रहने से स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाएं, मानसिक सेहत, कानूनी मदद और कमजोर कैदियों की सुरक्षा से सीधे समझौता होता है। इससे सुधार और पुनर्वास की प्रक्रिया भी कठिन हो जाती है। जब ठसाठस भरी जेलों के कारण बंदियों को दूर-दराज की जेलों में भेजा जाता है, तो बंदियों और उनके परिवारों के बीच की दूरी और बढ़ जाती है।

> 2024 में भारत की जेलों में कैदियों की संख्या 5.09 लाख थी, जबकि उनकी क्षमता 4.54 लाख थी



26 अक्तूबर को तमिलनाडु के दक्षिणी थेनी जिले की थेक्कमपट्टी उप-जेल से भागने वाले 17 विचाराधीन कैदियों में से कुछ। इन सभी को दो दिनों के भीतर पकड़ लिया गया

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की 'प्रिजन स्टैटिस्टिक्स इंडिया 2024' रिपोर्ट के अनुसार, भारत की जेलों में 4,53,769 की कुल अधिकृत क्षमता के मुकाबले 5,09,012 बंदी हैं, जो कुल क्षमता का 112.2 प्रतिशत है। इनमें बड़ा हिस्सा विचाराधीन बंदियों का है।

निष्पक्ष सुनवाई और जेल सुधारों के लिए काम करने वाले संगठन 'एविडेंस' के संस्थापक-निदेशक और मानवाधिकार कार्यकर्ता विंसेंट राज अरुलसामी कहते हैं, 'यह शायद भारत के जेल संकट का सबसे व्यथित करने वाला पहलू है। कानूनन एक विचाराधीन बंदी तब तक निर्दोष है जब तक दोष सिद्ध न हो जाए। फिर भी हजारों लोग सलाखों के पीछे सड़ते रहते हैं, कई बार तो उस सजा की अवधि से भी अधिक समय तक, जो उन्हें दोषी साबित होने पर मिलती।'

वह कहते हैं, 'इंडिया जस्टिस रिपोर्ट 2025 के अनुसार, कुछ जेल संकेतकों पर तमिलनाडु का प्रदर्शन कई राज्यों से बेहतर रहा है। लेकिन इससे क्षमता से अधिक बंदियों की समस्या या उस व्यवस्थागत विफलता से आंखें नहीं मूंदी जा सकतीं जो कैद की अवधि को बेवजह खींचती है।' इस व्यवस्था की एक और कड़वी सच्चाई यह है कि क्या जेल के नियम ताकतवर और कमजोर दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं?

अगस्त 2024 में, कर्नाटक सरकार ने सात जेल अधिकारियों को तब निलंबित कर दिया जब कुछ तस्वीरें सामने आईं, जिनमें हत्या के मामले में बंद अभिनेता दर्शन बेंगलुरु की परप्पना अग्रहारा सेंट्रल जेल में कथित तौर पर विशेष खातिरदारी का आनंद लेते दिखे। जेल के भीतर से किए गए एक वीडियो कॉल ने भी जांच का रुख मोड़ा, जिससे सवाल खड़ा हुआ कि प्रभावशाली बंदियों को वे सुविधाएं और छूट कैसे मिल जाती हैं जो आम कैदियों की पहुंच से बाहर हैं।

राजस्थान इसका एक और उदाहरण पेश करता है। मई 2025 में, जयपुर सेंट्रल जेल के चार बंदियों ने कथित रूप से फर्जी मेडिकल रेफरल बनवाए और अस्पताल जाने के बहाने होटलों में मौज-मस्ती करने के लिए सुरक्षाकर्मियों को रिश्वत दी। इस मामले में पांच सिपाहियों, चार बंदियों और चार रिश्तेदारों सहित 13 लोगों को गिरफ्तार किया गया। पुलिस जांच से खुलासा हुआ कि एक बिचौलिए के जरिये इन दौरों के लिए लगभग 25,000 रुपये वसूले जाते थे।

जेल एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां कानून की मौजूदगी साफ दिखे और वह न्यायसंगत नजर आए। जेल से बंदियों का भागना जहां ठसाठस भरी और स्टाफ की कमी से जूझती व्यवस्था की कमियों को उजागर करता है, वहीं बंदियों को मिलने वाला यह खास बर्ताव एक परेशान करने वाले विरोधाभास को सामने लाता है- सुधार गृहों की ऊंची दीवारें भी सत्ता और रसूख के आगे दरक जाती हैं। ■

के. ए. शाजी मानवाधिकार और ग्रामीण मामलों पर लिखने वाले वरिष्ठ पत्रकार हैं

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

कुछ तो गड़बड़ है टाटा ग्रुप के अंदर

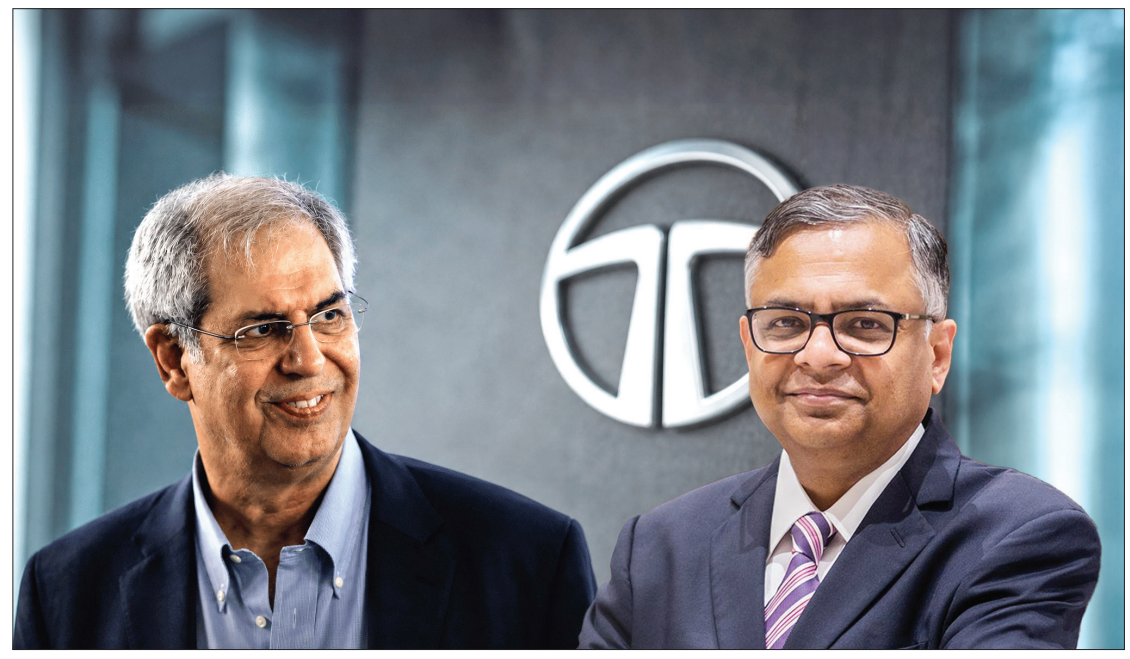

प्रोसेनजित दत्ता

टाटा ट्रस्ट्स और टाटा संस पर नियंत्रण के लिए छिड़ी लड़ाई का नतीजा जो भी निकले, सबसे बड़ा नुकसान उस साख को होने वाला है जिसे इस कारोबारी समूह ने पीढ़ियों की कड़ी मेहनत से अर्जित किया है। साथ ही, उन कई प्रतिष्ठित लोगों की साख भी दांव पर होगी जो टाटा संस और विभिन्न टाटा ट्रस्ट्स के बोर्ड में शामिल हैं।

टाटा ट्रस्ट्स के चेयरमैन नोएल टाटा के समर्थकों और विरोधियों के बीच छिड़ी इस लड़ाई में नैतिकता, उसूल और कायदे-कानून, सब बहुत लचीले साबित हुए हैं। विरोध करने वालों में टाटा ट्रस्ट्स के वाइस-चेयरमैन वेणु श्रीनिवासन और विजय सिंह, तथा टाटा संस के मौजूदा चेयरमैन एन. चंद्रशेखरन शामिल हैं। इस लड़ाई ने भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका पर भी सवाल खड़े कर दिए हैं।

पहला सवाल यह है कि टाटा ट्रस्ट्स की ओर से बोले कौन? दिवंगत रतन टाटा (जिन्हें आरएनटी के नाम से भी जाना जाता था) के सौतेले भाई नोएल टाटा को अपने ही वाइस-चेयरमैनों के कड़े सार्वजनिक विरोध का सामना करना पड़ रहा है। इन वाइस-चेयरमैनों ने महाराष्ट्र के कमिश्नर ऑफ ट्रस्ट्स से भी शिकायत की है। रतन टाटा के निधन के बाद नोएल को सर्वसम्मति से ट्रस्ट्स का चेयरमैन बनाने के लिए एकजुट होने वाले भी यही लोग थे, लेकिन अब वे उनके खिलाफ हैं।

दूसरा सवाल टाटा संस के चेयरमैन एन. चंद्रशेखरन ('चंद्रा' के नाम से चर्चित) के आचरण और टाटा संस के स्वतंत्र निदेशकों (जिनमें हरीश मनवानी और अनीता मरंगोली जॉर्ज शामिल हैं) की भूमिका को लेकर है। नोएल टाटा को छोड़कर, टाटा संस बोर्ड के सभी सदस्यों ने अपने दो प्रमुख शेयरधारकों की राय लिए बिना ही, चंद्रा को बतौर टाटा संस के चेयरमैन तीसरा कार्यकाल दिए जाने पर सहमति दे दी। टाटा संस में टाटा ट्रस्ट्स की 66 प्रतिशत हिस्सेदारी है, और नोएल साफ कर चुके थे कि वे चंद्रा को तीसरा कार्यकाल देने के पक्ष में नहीं हैं। जिन निदेशकों ने चंद्रा को पांच साल का तीसरा कार्यकाल देने के पक्ष में वोट दिया, उन्होंने यह बात भी नजरअंदाज कर दी कि चंद्रा दो साल में ही टाटा संस के कार्यकारी निदेशकों के लिए निर्धारित अनिवार्य रिटायरमेंट की उम्र पार करने वाले हैं।

कॉरपोरेट जगत में मतभेद और उत्तराधिकार की लड़ाइयां कोई नई बात नहीं। लेकिन टाटा समूह का जोर हमेशा से अपनी नैतिकता, उच्च मानकों का पालन और सही तरीके से काम करने पर रहा है। वह सारी उच्च आदर्शवादी बातें अब हवा हो गई हैं।

आपस में लड़ रहे पक्ष सार्वजनिक तौर पर एक-दूसरे की कमियां उजागर कर रहे हैं। एक-दूसरे को लिखे गए पत्र मीडिया में जारी किए गए, और बोर्डरूम में मतभेदों को सुलझाने या अलग-अलग विचारों पर चर्चा करने की कोई कोशिश सामने नहीं आई है। टाटा ट्रस्ट्स ने कई सामाजिक परियोजनाओं के लिए अनुदान मंजूर करने के वास्ते हाल ही में एक बैठक की थी, लेकिन ये विवादित मुद्दे उसके एजेंडे में शामिल नहीं थे।

इस बीच, टाटा संस बोर्ड की अगली बैठक 30 नवंबर को तय है। देखने की बात होगी कि क्या और किस तरह से निदेशक, कंपनी के सबसे बड़े शेयरधारक के साथ अपने मतभेदों को सुलझाने की कोशिश करते हैं।

*

रतन टाटा के निधन के बाद अक्तूबर 2024 में टाटा ट्रस्ट्स के चेयरमैन बने नोएल टाटा भी पूरी तरह से दोषमुक्त नहीं हैं। ट्रस्टों पर नियंत्रण हासिल करने की कोशिश में, उन्होंने शायद ज्यादा जल्दबाजी में कई पुराने ट्रस्टियों को हटाना चाहा, जिनमें दो वाइस-चेयरमैन भी शामिल थे।

नोएल शायद अपने बच्चों के लिए भी समूह और ट्रस्टों में बड़ी भूमिका की संभावना तलाश रहे होंगे। असहमति की एक वजह शायद यह भी रही। इसके अलावा, शुरुआत में वेणु और अन्य ट्रस्टियों के साथ इस बात पर सहमत होने के बावजूद, कि चंद्रा को बतौर टाटा संस के चेयरमैन एक और कार्यकाल मिलना चाहिए, नोएल ने अपना इरादा बदल लिया। उन्होंने अपने साथी ट्रस्टियों के साथ इस बदलाव पर चर्चा करना भी जरूरी नहीं समझा।

इस बीच, चंद्रा ने यह भी दिखा दिया है कि अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार हैं। शुरुआत में उन्होंने शायद नोएल टाटा से मतभेदों के कारण अपना मौजूदा कार्यकाल पूरा होने पर पद छोड़ने की बात कही थी, लेकिन अब उनकी खासी दिलचस्पी तीसरा कार्यकाल स्वीकार करने में दिखाई दे रही है।

इस पूरे मामले में रिजर्व बैंक के नियम भी चर्चा के घेरे में हैं। रिजर्व बैंक ने टाटा संस को 'अपर लेयर नॉन-बैंकिंग फाइनेंशियल कंपनी' की श्रेणी में रखा है। अपनी श्रेणी की अन्य एनबीएफसी कंपनियों के विपरीत, टाटा संस टाटा समूह की कंपनियों के अलावा किसी और को कर्ज नहीं देती है। साथ ही, इसने अपना सारा कर्ज भी चुका दिया है। कई विशेषज्ञों का कहना है कि रिजर्व बैंक, टाटा संस के वित्तीय लेन-देन में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए उसे लिस्ट होने (शेयर बाजार में सूचीबद्ध होने) के लिए बाध्य नहीं करता है।

हालिया दौर में यह दूसरी बार है जब टाटा समूह नियंत्रण पाने के लिए एक तल्ख और आर-पार की लड़ाई में उलझा है। इससे पहले ऐसा तब हुआ था जब रतन टाटा ने गंभीर मतभेदों के बाद अपने चुने हुए उत्तराधिकारी साइरस मिस्त्री को टाटा संस के चेयरमैन पद से हटाने का फैसला किया था। उस समय भी यह लड़ाई चुनिंदा जानकारी लीक करके, चिट्ठियां लिखकर, मीडिया को जानकारी देकर और अदालती कार्यवाही के जरिये लड़ी गई थी।

यह लड़ाई भी अब अदालत पहुंच चुकी है। टाटा ट्रस्ट्स ने टाटा संस और उसके बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के खिलाफ बॉम्बे हाई कोर्ट का दरवाजा खटखटाया है। दोनों पक्षों की ओर से देश के कुछ बेहतरीन वकील उनके लिए खड़े हैं।

मौजूदा मुश्किलें शायद इसलिए भी पैदा हुई हैं, क्योंकि रतन टाटा अंत तक ग्रुप पर अपना नियंत्रण नहीं छोड़ पाए। टाटा संस के चेयरमैन पद से रिटायर होने के बाद भी, रतन टाटा ने टाटा ट्रस्ट्स के प्रमुख के तौर पर समूह पर अपना नियंत्रण बनाए रखा, क्योंकि टाटा ट्रस्ट्स ही टाटा संस का मुख्य शेयरधारक है। और भले ही रतन टाटा जानते होंगे कि अन्य कॉरपोरेट समूहों में उत्तराधिकार की लड़ाइयां कैसे होती हैं, उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया कि उनके बाद ऐसी कोई नौबत न आए। उन्होंने यह भी साफ करना ज़रूरी नहीं समझा कि उनके बाद ट्रस्टों का नियंत्रण किसके पास होगा।

रतन टाटा चाहते थे कि टाटा संस के चेयरमैन के चुनाव और अन्य अहम फैसलों पर वीटो का अधिकार टाटा ट्रस्ट्स के पास रहे। वह नहीं चाहते थे कि टाटा संस लिस्टेड हो। इन दोनों मुद्दों पर नोएल की राय रतन टाटा से अलग नहीं है।

जहां नोएल चाहते हैं कि टाटा संस एक प्राइवेट कंपनी बनी रहे, वहीं दूसरा सबसे बड़ा शेयरहोल्डर- शापूरजी पलोनजी ग्रुप, जिसके पास टाटा संस की लगभग 18.4 प्रतिशत हिस्सेदारी है, इसकी लिस्टिंग कराने का खासा इच्छुक है। इससे उन्हें अपने शेयरों की वैल्यू अनलॉक करने में मदद मिलेगी। 'मिंट' की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार, शापूरजी मिस्त्री पिछले एक साल से लगातार रिजर्व बैंक के पास पैरवी कर रहे हैं और टाटा संस की लिस्टिंग के लिए जोर डाल रहे हैं।

1868 में अपनी स्थापना के बाद से इस समूह ने कई तूफानों का सामना किया है और उनसे पार भी पाया है, लेकिन इस बार का यह मौजूदा संकट बड़े स्थायी नुकसान की चेतावनी दे रहा है। ■

आपस में लड़ रहे पक्षों द्वारा अपनी निजी कलह को सार्वजनिक किए जाने से इस कारोबारी समूह की साख को धक्का लगा है

प्रोसेनजीत दत्ता अनुभवी बिज़नेस एडिटर और लेखक हैं

जब मुनाफ़ा तेज़ी से बढ़े, लेकिन वेतन स्थिर रहे

बेहतर बैलेंस शीट और कम करों के बावजूद निजी क्षेत्र निवेश करने से क्यों हिचकिचा रहा है

अजीत रानाडे

फिक्की के हालिया सम्मेलन में भारतीय उद्योग जगत पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का प्रहार असामान्य रूप से तीखा था। कॉरपोरेट करों में भारी रियायतों और लगातार बढ़ते मुनाफे के बावजूद कंपनियां वेतन और रोजगार बढ़ाने में विफल क्यों रही हैं? इससे पहले आर्थिक मामलों की सचिव अनुराधा ठाकुर ने भी ऐसी ही चिंता जताई थी। मुख्य आर्थिक सलाहकार वी. अनंत नागेश्वरन दो वर्षों से मुनाफे और वेतन की इस खाई को लेकर आगाह कर रहे हैं। इन तमाम चिंताओं से आर्थिक विकास के उचित वितरण, मेहनतकश लोगों की आजीविका और निजी उद्योग द्वारा खुलकर निवेश न करने की हिचकिचाहट पर सवाल खड़े होते हैं।

आंकड़ों पर गौर कीजिए। निफ्टी 500 कंपनियों का सालाना मुनाफा 2020-21 के 6.5 लाख करोड़ से बढ़कर 2025-26 में 18.1 लाख करोड़ रुपये हो गया, जो 23 फीसद की वृद्धि है। इन कंपनियों का मुनाफा अब सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 5.2 फीसद के बराबर पहुंच चुका है, जो रिकॉर्ड ऊंचा स्तर है। वर्ष 2019 में कॉरपोरेट टैक्स दर 30 से घटाकर 22 फीसद की गई थी, ताकि नए निवेश, औद्योगिक विस्तार और रोजगार सृजन को बल मिल सके। फिर भी, निजी निवेश में वह तेजी नहीं दिखी जिसकी उम्मीद थी।

अब कामगारों के वेतन की स्थिति देखिए। नवीनतम वार्षिक उद्योग सर्वेक्षण (एएसआई) दिखाता है कि वर्ष 2024-25 में एक कारखाने के औसत श्रमिक की वार्षिक आय 2.28 लाख रुपये यानी लगभग 19,000 रुपये प्रति माह रही। मुद्रास्फीति के समायोजन के बाद इस वेतन में महज 0.7 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई। पिछले छह में से पांच वर्षों के दौरान कारखानों के वास्तविक वेतन में सालाना एक फीसद से भी कम बढ़ोतरी हुई। इसके विपरीत, कारखानों के प्रबंधकीय पदों पर बैठे अधिकारियों का औसत वार्षिक पारिश्रमिक आम श्रमिकों की तुलना में छह गुना से भी अधिक है। इस तरह समूचे उद्योग के भीतर और स्वयं कंपनियों के अंदर विषमता की गहरी खाई है। कॉरपोरेट मुनाफे की तुलना में यह अंतर बेहद चौंकाने वाला है। महंगाई की तुलना में वेतन में कोई वास्तविक बढ़ोतरी न होने के कारण परिवार अपने रोजमर्रा के खर्च चलाने के लिए लगातार कर्ज पर निर्भर होते जा रहे हैं। घरेलू कर्ज का यह बढ़ता बोझ अंतहीन समय तक वास्तविक आय का विकल्प नहीं बन सकता।

सच है कि शेयर बाजार में सूचीबद्ध बड़ी कंपनियां समूचे औद्योगिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। हजारों छोटे विनिर्माता, कलपुर्जा आपूर्तिकर्ता और उप-ठेकेदार बेहद कम मार्जिन, अनिश्चित आर्डरों और कर्ज के सीमित साधनों पर काम कर रहे हैं। संभव है कि इनमें से कई तब भी संघर्ष कर रहे हों, जब उनकी बड़ी ग्राहक कंपनियां रिकॉर्ड मुनाफा दर्ज कर रही हैं। इससे उद्योग जगत के भीतर ही लाभ के असमान वितरण का एक और पहलू सामने आता है। फिर भी, बड़ी कंपनियों के असाधारण मुनाफे की सच्चाई को नकार नहीं सकते।

बैलेंस शीट मजबूत होने और करों में कटौती के बावजूद निजी क्षेत्र नए पूंजी निवेश से हाथ क्यों खींच रहा है? कंपनियां निवेश तभी करती हैं जब उन्हें अपने उत्पादों की पर्याप्त मांग दिखाई दे। केवल मुनाफा बढ़ जाने या कर देनदारी घटने भर से कोई कारखाना अपनी क्षमता का विस्तार नहीं करता। उसके भीतर यह भरोसा होना जरूरी है कि अतिरिक्त उत्पादन को लाभ के साथ बाजार में खपाया जा सकेगा। यदि परिवारों की आय में सुस्ती रहेगी, तो मांग का भरोसा डगमगाता रहेगा। ऐसी स्थिति में कंपनियां नए निवेश के बजाय पुराने कर्ज चुकाने, वित्तीय संपत्तियां जमा करने या शेयरधारकों को लाभांश बांटने को प्राथमिकता देंगी।

यह स्थिति समूची अर्थव्यवस्था के लिए संकट पैदा करती है। जब वेतन स्थिर हो जाए, तो करोड़ों परिवारों के पास खर्च के लिए अतिरिक्त पैसे नहीं बचते। कमजोर उपभोग नए निवेश को हतोत्साहित करता है, जिससे बेहतर वेतन वाले रोजगारों के अवसर सीमित हो जाते हैं। घरेलू आय की यह कमजोरी इस दुष्चक्र को लगातार घुमाती रहती है। एक व्यक्तिगत कंपनी के दृष्टिकोण से जो निर्णय वित्तीय समझदारी लग सकता है, वह सामूहिक रूप से पूरी आर्थिक वृद्धि की रफ्तार थाम देता है। जीएसटी में कमी के बाद ऑटोमोबाइल बिक्री में आई हालिया तेजी दिखाती है कि कम कीमतें मांग को गति दे सकती हैं। लेकिन ऐसा प्रोत्साहन फौरी साबित हो सकता है। बाजारों के टिकाऊ विस्तार के लिए परिवारों की क्रय शक्ति में निरंतर वृद्धि जरूरी है।

मुनाफे और वेतन के बीच की इस लगातार चौड़ी होती खाई की एक गहरी वजह भी है। इसका सीधा संबंध श्रम और पूंजी की मोलभाव की सापेक्ष ताकत से है। पिछले दो दशकों में भारतीय उद्योग ठेका श्रमिकों, आउटसोर्सिंग और अनौपचारिक नियुक्तियों पर अत्यधिक निर्भर हो चुका है। एक ही कारखाने में समान काम करने वाले दो श्रमिकों को सिर्फ इस आधार पर अलग वेतन और सुविधाएं मिलती हैं कि एक स्थायी कर्मचारी है और दूसरा ठेकेदार के जरिये आया है। ट्रेड यूनियनों के कमजोर पड़ने और नियमित रोजगार की तलाश में भटक रहे लोगों की भारी तादाद ने श्रमिकों की मोलभाव क्षमता को और घटा दिया है।

इसके दुष्परिणाम कभी-कभार गंभीर हिंसा के रूप में भी सामने आए। मारुति सुजुकी के मानेसर संयंत्र में लंबे समय तक चला श्रम विवाद जुलाई 2012 में अत्यंत दुखद हिंसा में बदला, जिसमें एक वरिष्ठ अधिकारी की जान चली गई थी। इसके 14 वर्ष बाद, नोएडा और हरियाणा के औद्योगिक क्षेत्रों में अपर्याप्त वेतन और जीवनयापन की बढ़ती लागत के खिलाफ ठेका श्रमिकों का असंतोष भड़का। हिंसा को कभी भी वाजिब नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन ये घटनाएं उस औद्योगिक तंत्र में सुलगते तनाव को दिखाती हैं, जहां श्रमिकों के पास सौदेबाजी की ताकत सीमित है और उनकी शिकायतों के निपटारे के प्रभावी रास्ते लगभग बंद।

रोजगार के नए तौर-तरीके इस असंतुलन को और बढ़ा रहे हैं। प्लेटफॉर्म कंपनियां डिलीवरी कर्मियों और ड्राइवरों को 'स्वतंत्र व्यावसायिक भागीदार' कहती हैं, भले उनकी कमाई और काम की शर्तें पूरी तरह इन प्लेटफॉर्मों द्वारा तय की जाती हैं। ध्यान देने की बात है कि अब गिग वर्कर भी लामबंद होकर आवाज उठाने लगे हैं। नए श्रम संहिताओं में सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य से गिग और प्लेटफॉर्म श्रमिकों को मान्यता दी गई है, लेकिन इसका जमीन पर प्रभावी सुरक्षा में बदलना जरूरी है। मूल प्रश्न वही हैः कामगारों को ऐसे संस्थागत मंच चाहिए जहां वे उस मूल्य में से अपना वाजिब हिस्सा तय कर सकें, जिसके निर्माण में उनका पसीना लगा है।

इस पूरी प्रक्रिया में सरकारी नीतियों की बड़ी भूमिका है। ऊंची लागत, नियामकीय अनिश्चितताएं, कौशल की कमी और निर्यात में आने वाली बाधाएं श्रम-प्रधान उद्योगों के विस्तार को रोक सकती हैं। न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा और सामूहिक सौदेबाजी का वैधानिक ढांचा भी सार्वजनिक नीतियों से ही तय होता है। सरकार इन ढांचागत रुकावटों को जस का तस छोड़कर कंपनियों को सिर्फ यह उपदेश नहीं दे सकती कि वे अधिक लोगों को रोजगार और बेहतर वेतन दें। उत्पादक रोजगार और बढ़ती आमदनी की जमीन तैयार करने की जिम्मेदारी केवल कॉरपोरेट बोर्डरूम तक सीमित नहीं है।

इसके बावजूद प्रधानमंत्री की आलोचना पूरी तरह तर्कसंगत है। लगातार भारी मुनाफा कमा रही कंपनियों के पास वेतन और कार्यदशाओं को बेहतर बनाने की पूरी गुंजाइश है। उच्च उत्पादकता का लाभ बेहतर पारिश्रमिक के रूप में दिखना चाहिए और कामगार उस समृद्धि में न्यायसंगत हिस्सेदारी के हकदार हैं जिसे गढ़ने में वे भागीदार हैं। श्रम और पूंजी के बीच बढ़ता यह असंतुलन आर्थिक दक्षता का प्रश्न है और सामाजिक न्याय का भी। कामगार गरिमापूर्ण जीवन और सुरक्षा के अधिकारी हैं, और यह अधिकार इस बात से बिल्कुल स्वतंत्र है कि वे उपभोक्ता मांग बढ़ाने में कितना योगदान देते हैं।

अमेरिकी मोटर वाहन कारखाने में रोबोट शामिल किए जाने से जुड़ा एक पुराना किस्सा है। जब कंपनी के एक अधिकारी ने यूनियन नेता वाल्टर रूथर से व्यंग्य में पूछा कि वे इन रोबोटों से यूनियन का चंदा कैसे वसूलेंगे, तो रूथर का तुरंत जवाब थाः कंपनी अपनी बनाई कारें खरीदने के लिए इन रोबोटों को कैसे तैयार करेगी?

यह किस्सा आज भी उतना ही प्रासंगिक है, भले भारतीय उद्योगों में रोबोटों का इस्तेमाल अभी सीमित स्तर पर हो। इसका बड़ा सबक उत्पादन, रोजगार और क्रय शक्ति के आपसी संबंध को लेकर है। भारत का आर्थिक विकास हमेशा कॉरपोरेट मुनाफे की उड़ान और आम श्रमिकों के ठहरते जीवन स्तर के सहारे आगे नहीं बढ़ सकता। आर्थिक लाभ का न्यायसंगत बंटवारा ही लोगों की आजीविका को संबल देगा, घरेलू मांग को विस्तार देगा और उस निजी निवेश को जमीन पर उतारेगा जिसकी देश को आज सबसे ज्यादा दरकार है। ■



कम वेतन और बढ़ती कीमतों के खिलाफ नोएडा में प्रदर्शन करते औद्योगिक संविदा कर्मचारी

कारखानों में वास्तविक वेतन में 1% से भी कम की वृद्धि हुई है, वहीं कॉरपोरेट मुनाफे में 23% की बढ़ोतरी हुई है

अजीत रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं।
साभार: द बिलियन प्रेस

दिखावटी हिन्दू भाईचारे की हक़ीक़त

नेपाली पीएम बालेन शाह की भारत यात्रा के धार्मिक प्रतीकों से परे दोनों देशों के बीच अनसुलझे भू-राजनीतिक मतभेद

अशोक स्वैन

फोटो: गेटी इमेजेज



भारत दौरे के दौरान बालेन शाह के साथ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी

जब नेपाल के प्रधानमंत्री बालेंद्र शाह ने नरेन्द्र मोदी को पवित्र रुद्राक्ष और शालिग्राम भेंट किया, और मोदी ने इसके जवाब में उन्हें गंगाजल सौंपा, तो दोनों नेता अपने देशों के बीच की सभ्यतागत और धार्मिक कड़ियों को सामने रख रहे थे। राम की जन्मभूमि अयोध्या को सीता की जन्मस्थली जनकपुर से जोड़ने वाली रेलगाड़ी के उद्घाटन ने इसी संदेश को और पुख्ता किया। लेकिन इन सोचे-समझे प्रतीकात्मक कदमों से इतर, 22-23 नवंबर को हुई बालेन शाह की इस यात्रा से उन राजनीतिक और भू-राजनीतिक वास्तविकताओं में शायद ही कोई बदलाव आया, जो वर्षों से भारत-नेपाल रिश्तों में अड़चन बनी हुई हैं।

मोदी के लिए बालेन की अगवानी करना राजनीतिक मजबूरी थी। रैपर से नेता बने बालेन नेपाली नेतृत्व की उस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे नई दिल्ली बहुत कम समझती है और जिसपर उसका प्रभाव भी बहुत सीमित है। नेपाल के स्थापित राजनीतिक वर्ग के खिलाफ युवा नेतृत्व वाले जनांदोलन के बाद बालेन के उत्थान ने काठमांडू में भारत के पारंपरिक प्रभाव तंत्र को झकझोर दिया है। उन्हें मिले भारी जनादेश के कारण मोदी सरकार के लिए उनसे पुराने ढर्रे पर निपटना कठिन हो गया है, जैसा वह अक्सर उनके पूर्ववर्तियों के साथ करती रही है। मार्च 2026 में प्रधानमंत्री बनने के बाद बालेन का पहली द्विपक्षीय यात्रा के लिए भारत को चुनना मोदी को कुछ कूटनीतिक तसल्ली भले दे दे, लेकिन इस फैसले को नेपाल के भू-राजनीतिक झुकाव के रूप में देखना भारी भूल होगी।

धार्मिक संदेश दोनों नेताओं के लिए राजनीतिक रूप से सुविधाजनक था। मोदी के लिए साझा हिन्दू विरासत के जरिये नेपाल के साथ संबंधों को पेश करना उनकी राजनीति और सोच के पूरी तरह अनुकूल है। वहीं बालेन के लिए कोई रणनीतिक रियायत दिए बिना सद्भाव जुटाने का यह आसान धार्मिक कूटनीतिक जरिया था। साझा संवाददाता सम्मेलन में अपने कई पूर्ववर्तियों की अंग्रेजी बोलने की परिपाटी से अलग हटकर नेपाली में बात करने का उनका फैसला उनके घरेलू मतदाताओं को भी खूब भाया। लेकिन नेपाल में उनकी भाषा के चयन का सुर्खियों पर छाना यह भी दिखाता है कि अन्य संदर्भ में इस यात्रा की उपलब्धि कितनी मामूली रही।

हवाई संपर्क पर किसी समग्र समझौते तक पहुंचने में विफलता इसकी सबसे साफ मिसाल थी। नेपाल लंबे समय से भैरहवा और पोखरा में बने अपने महंगे अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डों को व्यावसायिक रूप से व्यावहारिक बनाने के लिए भारतीय हवाई क्षेत्र से अतिरिक्त प्रवेश मार्गों की मांग करता रहा है। भारत मौजूदा काठमांडू-भैरहवा-लखनऊ मार्ग को तकनीकी परामर्श के अधीन दोतरफा गलियारे में बदलने पर सहमत हुआ। लेकिन महेंद्रनगर के रास्ते पश्चिमी हवाई पहुंच की नेपाल की अधिक महत्वपूर्ण मांग भारत के रणनीतिक अविश्वास के कारण अधर में लटक गई।

> धार्मिक संदेश दोनों के लिए सुविधाजनक था, लेकिन इसके अलावा कुछ खास हासिल नहीं हुआ

नेपाली मीडिया की रिपोर्टों के अनुसार, भारत ने बागडोगरा से संचालित होने वाले सैन्य विमानों के लिए नेपाली हवाई क्षेत्र के उपयोग की अनुमति मांगी थी। काठमांडू कथित तौर पर नागरिक उड़ानों के लिए तो तैयार था, लेकिन सैन्य विमानों के लिए नहीं। मोदी सरकार ने अपने 'सूत्रों' के जरिये साफ किया है कि ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया। रणनीतिक रूप से संवेदनशील सिलीगुड़ी गलियारे के करीब होने के कारण बागडोगरा हवाईअड्डे को लेकर हो रही बातचीत भू-राजनीतिक महत्व रखती है। बागडोगरा से जुड़ा यह अनुरोध नई दिल्ली द्वारा यह परखने की कोशिश थी कि चीन के संदर्भ में नेपाल भारत की सुरक्षा चिंताओं को समायोजित करने के लिए कितना तैयार है।

इन चिंताओं को स्वीकार करने में बालेन की अनिच्छा दिखाती है कि उनकी सरकार भारत से बेहतर रिश्तों के नाम पर नेपाल की रणनीतिक स्वायत्तता की बलि चढ़ाने को तैयार नहीं। उनके राष्ट्रवाद को भारत के प्रति शत्रुता या चीन के प्रति निष्ठा समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। नेपाल की आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियां भारत के साथ सहयोग को अपरिहार्य बनाती हैं, लेकिन चीन के साथ उसके संबंध भारत पर अत्यधिक निर्भरता के सामने एक जरूरी संतुलन भी प्रदान करते हैं। मोदी के साथ उनकी तस्वीरों को बीजिंग के खिलाफ किसी रणनीतिक प्रतिबद्धता के तौर पर नहीं पढ़ा जाना चाहिए।

नेपाली राजनेताओं में भारत-समर्थक के रूप में पहचाने जाने से बचने की बढ़ती प्रवृत्ति बहुत हद तक मोदी सरकार की नीतियों का ही नतीजा है। वर्ष 2015 की आर्थिक नाकेबंदी की कड़वी यादें, नेपाल की संविधान निर्माण प्रक्रिया में भारतीय हस्तक्षेप की आशंकाएं और भारत के हिन्दुत्व तंत्र के कुछ हलकों में नेपाल को फिर से हिन्दू राष्ट्र बनाने की बेताबी ने वहां गहरा असंतोष पैदा किया है।

बालेन को भी अपने देश में कुछ कड़े सवालों के जवाब देने हैं। काठमांडू के मेयर के रूप में उन्होंने अपने दफ्तर में 'ग्रेटर नेपाल' का नक्शा टांग रखा था और देश के क्षेत्रीय दावों की रक्षा करने में नाकाम रहने के लिए नेपाल के पुराने नेतृत्व की लगातार तीखी आलोचना की थी। इसके बावजूद प्रधानमंत्री के रूप में वह कालापानी, लिपुलेख, लिम्पियाधुरा और सुस्ता से जुड़े सीमा विवादों को सुलझाने के लिए नई दिल्ली से कोई ठोस आश्वासन हासिल किए बिना लौट आए। लंबित सीमा मामलों को सुलझाने के लिए विदेश सचिवों को दिए गए निर्देश असल में उसी वादे को दोहराते हैं जो 2014 में मोदी की पहली नेपाल यात्रा के दौरान किया गया था। हकीकत में 2014 का वह साझा बयान विवादित क्षेत्रों की पहचान करने में कहीं स्पष्ट था।

वर्ष 1950 की शांति और मित्रता संधि पर नेपाल की चिंताएं भी अनसुलझी ही रह गईं। न तो अग्निपथ योजना के आने के बाद भारतीय सेना में गोरखाओं की रुकी हुई भर्ती पर कोई बात बनी और न सार्क को पुनर्जीवित करने पर इस यात्रा में कोई सार्थक ध्यान दिया गया, जिसकी अध्यक्षता नेपाल के पास है। नेपाल का बढ़ता व्यापार घाटा और उसके निर्यात को सीमित करने वाली गैर-टैरिफ बाधाएं भी जस की तस बनी हुई हैं।

इस यात्रा की सबसे अधिक प्रचारित उपलब्धि अगस्त की विनाशकारी बाढ़ के बाद भारत द्वारा 240 अरब नेपाली रुपये (लगभग 1.6 अरब डॉलर) के सहायता पैकेज की घोषणा रही। बताया जाता है कि नेपाल ने 2 अरब डॉलर की मांग की थी, जिसमें से आधा हिस्सा अनुदान के रूप में था। भारत ने लगभग 37.7 करोड़ डॉलर अनुदान के रूप में दिए, जबकि शेष राशि ऊर्जा परियोजनाओं के लिए रियायती ऋण के रूप में दी गई।

काठमांडू के पास मोदी के आर्थिक वादों पर संदेह करने के पुख्ता कारण हैं। वर्ष 2015 के भूकंप के बाद भारत ने पुनर्निर्माण सहायता के रूप में 1 अरब डॉलर देने का वादा किया था, जिसमें 75 करोड़ डॉलर के रियायती ऋण थे। लेकिन सख्त खरीद शर्तों और जटिल मंजूरी प्रक्रियाओं के कारण ऋण का बड़ा हिस्सा जमीन पर नहीं उतर सका। जब तक नए पैकेज की शर्तों में बुनियादी बदलाव नहीं किया जाता, भारतीय सहायता नेपाल की पुनर्निर्माण जरूरतों से ज्यादा चुनिंदा भारतीय कंपनियों के व्यावसायिक हितों को ही पूरा करेगी।

अतिरिक्त पारगमन सुविधाओं की घोषणा पर भी ध्यान देने की जरूरत है। नेपाल ने धामरा और मुंद्रा बंदरगाहों तक पहुंच मांगी थी, लेकिन भारत ने इसके बदले कांडला और पारादीप की पेशकश की। नेपाली व्यापारियों के लिए बीरगंज के ड्राई पोर्ट तक नियमित मालगाड़ियों, प्रतिस्पर्धी मालभाड़े और सरल सीमा शुल्क प्रक्रियाओं के बिना इन अतिरिक्त बंदरगाहों का कोई विशेष अर्थ नहीं है। इन व्यवस्थाओं से मिलने वाले आर्थिक लाभ अभी भी अनिश्चित हैं।

बालेन शाह की यात्रा ने ऐसे दो प्रधानमंत्रियों के बीच एक कामकाजी रिश्ता जरूर कायम किया है जो एक-दूसरे को बहुत कम जानते थे, लेकिन यह कोई कूटनीतिक सफलता नहीं। न ही मोदी चीन के बरक्स नेपाल को भारत के भू-राजनीतिक प्रभाव में लाने में सफल रहे। बालेन ने भारत को रणनीतिक रियायतें देने से परहेज किया, लेकिन उनके विशाल चुनावी जनादेश की मांगें केवल भारतीय प्रधानमंत्री की सद्भावना हासिल करने से कहीं बड़ी हैं।

भारत के दीर्घकालिक हितों की रक्षा एक पराश्रित लेकिन असंतुष्ट पड़ोसी के बजाय एक समृद्ध और रणनीतिक रूप से स्वायत्त नेपाल से ही बेहतर तरीके से हो सकती है। इसके लिए मोदी सरकार को नेपाल के प्रति अपना नजरिया बदलना होगा, बजाय इसके कि वह हर नए नेपाली नेता से यह उम्मीद करे कि वह भारत के प्रति काठमांडू की नीतियों को बदल दे। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

वतन वापसी असलियत या सियासी शिगूफ़ा?

विजय दिवस पर लौटने के शेख हसीना के इरादे की घोषणा मात्र से ही बांग्लादेश में राजनीतिक सरगर्मी बढ़ी

फैसल महमूद (ढाका) और **सौरभ सेन** (कोलकाता)

फोटो: गेटी इमेजेज





बांग्लादेश के प्रधानमंत्री तारिक रहमान जानते हैं कि इस समय हसीना की वापसी उनकी चुनौतियों को बढ़ा देगी

बांग्लादेश की अपदस्थ प्रधानमंत्री शेख हसीना ने अपने निर्वासन को खत्म करने की एक तारीख तय कर ली है। रॉयटर्स के अनुसार, हसीना 16 दिसंबर- विजय दिवस, यानी पाकिस्तान से देश की आजादी की वर्षगांठ-को बिमान बांग्लादेश एयरलाइंस के विशेष विमान से ढाका लौटने का इरादा रखती हैं। तारिक रहमान प्रशासन ने इस प्रस्ताव को खारिज करने में तनिक भी देर नहीं लगाई। ढाका का साफ कहना है कि शेख हसीना भारत से प्रत्यर्पित होकर पुलिस हिरासत में हथकड़ियां पहनकर ही लौटेंगी।

उनके इस फैसले के समय को समझना कतई मुश्किल नहीं है। अगस्त 2024 में देश छोड़कर भागीं हसीना को बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) सरकार के खिलाफ पनप रहे सत्ता विरोधी असंतोष में एक नया मौका दिखाई दे रहा है। अवामी लीग पर अब भी प्रतिबंध लगा है और पार्टी कार्यकर्ता भूमिगत हैं या देश छोड़कर भाग गए हैं। बचे हुए कार्यकर्ताओं को मुकदमों, गिरफ्तारियों और हिरासत के अलावा घरों तथा दफ्तरों पर हो रहे हमलों का सामना करना पड़ रहा है। खुद हसीना को उनकी गैर-मौजूदगी में चले एक संदिग्ध मुकदमे के बाद ट्रिब्यूनल द्वारा मौत की सजा सुनाई जा चुकी है। समर्थकों का मानना है कि हसीना की बांग्लादेश वापसी-भले ही हथकड़ियों में क्यों न हो-उनकी राजनीतिक प्रासंगिकता को फिर जिंदा कर देगी। उनकी गिरफ्तारी से उनके मुकदमे की वैधानिकता और जिस तरह उन्हें सत्ता से बेदखल किया गया, उस पर अंतरराष्ट्रीय ध्यान जाएगा। इससे भी बढ़कर, अगर कुछ बीएनपी नेताओं के बयानों के अनुरूप उन्हें फांसी दे दी जाती है, तो उन्हें एक 'शहीद' के रूप में देखा जाएगा, जिससे अवामी लीग के पुनर्जीवन की राह खुल सकती है।

हसीना का खेमा इसे उनका संवैधानिक अधिकार बता रहा है। उनके प्रवक्ता सैयद मुजम्मिल अली का दावा है कि उन्हें अवैध रूप से निर्वासित किया गया और ढाका प्रशासन उनकी सुरक्षित वापसी का प्रबंध करने को कानूनन बाध्य है। विदेश राज्य मंत्री हुमायूं कबीर ने इस मांग को सिरे से खारिज करते हुए कहा कि उनकी वापसी केवल कड़ी सुरक्षा निगरानी में ही होगी। रॉयटर्स ने यह भी बताया कि विमान उपलब्ध कराने को लेकर नई दिल्ली के साथ आधिकारिक स्तर पर कोई बातचीत नहीं हुई है।

ढाका उनकी वापसी को आसान बनाने के पक्ष में बिल्कुल नहीं है। लौटने के उनके इरादे की घोषणा मात्र से बांग्लादेश का राजनीतिक पारा चढ़ गया। अवामी लीग के समर्थक गुप्त ठिकानों से बाहर निकल आए और जमात तथा बीएनपी कार्यकर्ताओं के साथ उनकी झड़पें तेज हो गईं। हसीना का पैतृक गृहक्षेत्र और पारंपरिक गढ़ गोपालगंज इससे सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

टुंगीपारा में आठ लोगों की गिरफ्तारी के विरोध में हुए प्रदर्शन सुरक्षा बलों के साथ हिंसक झड़पों में बदल गए; एक पुलिस थाने पर हमला हुआ, गश्ती वाहनों को आग लगा दी गई, सड़कें जाम कर दी गईं और सत्तारूढ़ बीएनपी के सांसद एस.एम. जिलानी के घर को आग के हवाले कर दिया गया।

अन्य स्थानों पर ग्रामीण बैंक की शाखाओं और आंदोलन के बाद बनी अंतरिम सरकार का नेतृत्व करने वाले मुहम्मद यूनुस के पैतृक घर पर आगजनी की घटनाएं हुईं। पिरोजपुर में अवामी लीग के कथित नारे लगाते हमलावरों द्वारा एक बस में आग लगा दिए जाने से उसके सहायक की मौत हो गई।

प्रशासन को यह चिंता भी सता रही है कि हसीना की वापसी से उनपर चले संदिग्ध मुकदमे पर ध्यान केंद्रित होगा और लोग उनके शासनकाल के रिकॉर्ड की तुलना मौजूदा व्यवस्थाओं से करने लगेंगे। रहमान सरकार के सामने दोहरी चुनौती हैः सड़कों पर कानून-व्यवस्था बनाना और हसीना की सियासी वापसी को रोकना।

इस महीने के शुरू में हसीना का प्रतिनिधित्व करने वाली लंदन की कानूनी फर्म 'मैट्रिक्स चैंबर्स' ने नए पासपोर्ट और राष्ट्रीय पहचान पत्र के लिए नई दिल्ली स्थित बांग्लादेश उच्चायोग से संपर्क किया था। इस बीच अवामी लीग के वरिष्ठ नेताओं ने प्रतिबंध के बावजूद दिसंबर में राजनीतिक गतिविधियां फिर शुरू करने का संकल्प जताया है। पार्टी के वरिष्ठ नेता शफीउल आलम चौधरी नादेल ने 'संडे नवजीवन' को बताया कि बीएनपी द्वारा व्यापक राजनीतिक गठबंधन बनाने की कोशिशें असल में अवामी लीग की वापसी के उसके खौफ को ही उजागर करती हैं।

*

तो क्या शेख हसीना की यह बहुचर्चित 'घर वापसी' महज एक राजनीतिक नाटक है? या फिर इसकी कोई वास्तविक या दूरगामी संभावना है? विश्लेषक इसे 79 वर्षीय नेत्री द्वारा सुर्खियों में बने रहने और अपनी पार्टी में नई जान फूंकने की आखिरी कोशिश के रूप में देख रहे हैं।

नई दिल्ली के सत्ता के गलियारों में चर्चा है कि हसीना अपनी शर्तों पर तो कतई वापस नहीं लौट सकतीं। इसकी संभावना भी कम ही है कि भारत उन्हें ढाका की मांग के अनुसार प्रत्यर्पित कर देगा। दिल्ली का तर्क रहा है कि वह वायुसेना के आधिकारिक विमान से एक मित्र राष्ट्र की प्रधानमंत्री के रूप में भारत आई थीं, न कि किसी सजायाफ्ता मुजरिम के तौर पर। यद्यपि विदेश नीति प्रतिष्ठान का एक वर्ग ऐतिहासिक रूप से मित्रवत रही अवामी लीग के पुनरुद्धार की आस में उन्हें वापस भेजने का इच्छुक दिखता है, लेकिन राजनीतिक नेतृत्व 'बहनजी' को मुसीबतों के मुंह में धकेलने से हिचक रहा है।

इसके बजाय शीर्ष राजनयिक मामले को सुस्त करने के पक्षधर दिखाई देते हैं। वे कानूनी और कूटनीतिक पेचीदगियों को अपने हिसाब से चलने देना चाहते हैं, ताकि उन्हें समय मिले और हसीना को अपनी वापसी टालने के लिए प्रेरित किया जा सके।

इस बहस के केंद्र में अवामी लीग और स्वयं हसीना की मौजूदा राजनीतिक ताकत को लेकर बेहद अलग-अलग आकलन हैं। वर्ष 1971 के मुक्ति संग्राम की साझी विरासत से जुड़े भारतीय विश्लेषक ढाका में अवामी लीग की वापसी की वकालत करते हैं। उनका मानना है कि इसका पुनरुत्थान ही बीएनपी को कमजोर कर सकता है। उनका तर्क है कि 2026 का जनादेश अधूरा है, क्योंकि अवामी लीग ने फरवरी के आम चुनावों में हिस्सा नहीं लिया था।

दूसरी ओर, आलोचक तुरंत जवाब देते हैं कि बीएनपी ने स्वतंत्र और निष्पक्ष माने गए चुनावों में लगभग 50 प्रतिशत वोट और दो-तिहाई बहुमत हासिल किया है। उनका यह भी तर्क है कि नई दिल्ली में हसीना के कुछ समर्थक इसे नजरअंदाज कर देते हैं कि समय के साथ अवामी लीग किस कदर बदल चुकी थी-भ्रष्टाचार, मानवाधिकार हनन, न्यायेतर हत्याओं के आरोपों और कट्टरपंथी इस्लामी समूहों से साठगांठ ने खासकर युवा मतदाताओं के बीच पार्टी के जनाधार को खोखला कर दिया था।

> बीएनपी सरकार के खिलाफ सत्ता विरोधी लहर को देखते हुए हसीना को एक मौका नजर आ रहा है

यह अवामी लीग की ही सरकार थी जिसने 1971 के मुक्ति संग्राम के दौरान कथित भूमिका के लिए 2013 और 2016 के बीच जमात के कई बड़े नेताओं को फांसी पर लटका दिया था। यह भी शेख हसीना की सरकार थी जिसने निर्वासित जमात और बीएनपी नेताओं के पासपोर्ट रद्द कर दिए थे। विश्लेषकों का मानना है कि अवामी लीग नेताओं की अंधाधुंध गिरफ्तारी और दिखावटी मुकदमों की मिसालें पहले से मौजूद हैं। अवामी लीग ने भी सत्ता में रहने के दौरान बीएनपी और जमात नेताओं को ऐसे ही प्रताड़ित किया था।

22 नवंबर को अवामी लीग के चार वरिष्ठ नेताओं ने पश्चिम बंगाल में सीमा पार करने वाले प्रमुख बिंदुओं-दर्शना-गेदे और पेट्रापोल-बेनापोल का जायजा लिया। इसका मकसद भांपना था कि क्या बांग्लादेशी सीमा पर 'लाखों लोगों' की भीड़ जुटाकर एक सुरक्षा घेरा बनाया जा सकता है, जो उन्हें सुरक्षित ढाका ले जाए। बताया जाता है कि हसीना द्वारा विशेष विमान की मांग तभी की गई जब इस खोजी दल ने साफ कर दिया कि पार्टी किसी भी तरह 'लाखों लोगों' की भीड़ जुटाने की स्थिति में नहीं है।

तो फिर वह वापस कैसे जाएंगी? बिना वैध पासपोर्ट के वह विमान से यात्रा नहीं कर सकतीं। भारत सरकार द्वारा उन्हें आधिकारिक सुरक्षा के साथ सीमा तक छोड़ना असंभव सा दिखता है; और अपने स्तर पर निकटतम सीमा तक पहुंचने के लिए 1,700 किलोमीटर से अधिक की यात्रा करना बिल्कुल व्यावहारिक नहीं है। इस पूरी कहानी में अकेला नाटकीय मोड़ यह बचता है कि वह बांग्लादेश उच्चायोग में उपस्थित होकर राजनीतिक उत्पीड़न और जान के खतरे की गुहार लगाएं। क्या वह ऐसा कदम उठाएंगी? ■

बिलांगिंग: सोनिया गांधी के प्रेम, संघर्ष और नेतृत्व का सफर

एक ऐसी कहानी, जिसे सिर्फ वही सुना सकती थीं

कुछ लोगों के जीवन के सबसे अहम पहलू उनकी सार्वजनिक छवि के पीछे छिपे रह जाते हैं। सोनिया गांधी के साथ भी ऐसा ही हुआ। दशकों तक उनके बारे में लिखा गया, चर्चा हुई और राजनीतिक विश्लेषण किए गए, लेकिन उनके परिवार और करीबी लोग जिस सोनिया को जानते थे, वह इन कहानियों में अक्सर गायब रहीं। इसी कमी ने उन्हें अपनी कहानी खुद लिखने के लिए प्रेरित किया।

अपनी किताब 'Belonging: A Journey of Love' में सोनिया गांधी ने बचपन से लेकर राजीव गांधी से मुलाकात, भारत आने, परिवार बसाने, निजी दुखों और राजनीति में आने तक के सफर को साझा किया है।

यह किताब सिर्फ सत्ता, चुनाव और राजनीति का लेखा-जोखा नहीं है। इसमें प्रेम, अपनापन, असमंजस, दुख, जिम्मेदारियों और मुश्किल फैसलों की कहानी है। सोनिया उन यादों को भी साझा जिन्हें याद करना उनके लिए आसान नहीं था साथ ही वह उन लोगों की निजता का भी ध्यान रखती हैं, जिनकी कहानियां सिर्फ उनकी अपनी नहीं हैं। इस किताब की खासियत इसका खुलापन और ईमानदारी है। व्यक्तिगत दुखों को सार्वजनिक करते हुए उन्हें सनसनीखेज बनाने से बचना और अपनी कमजोरियों, आशंकाओं तथा आत्मसंघर्ष को स्वीकार करना आसान नहीं होता। सोनिया गांधी ने राजनीति में आने से पहले अपने भीतर चले संघर्ष और सार्वजनिक जीवन के फैसलों पर खुलकर लिखा है।

इस मायने में 'Belonging' एक ऐसी शख्सियत की निजी कहानी है, जिसे दुनिया ने अब तक मुख्य रूप से राजनीतिक सुर्खियों के जरिए जाना। यह किताब न केवल बताती है कि सोनिया गांधी ने क्या किया, बल्कि यह भी कि उन्होंने क्या महसूस किया, किस बात से डरती थीं और भारत के प्रति अपनी जिम्मेदारी को किस तरह देखती थीं।

आखिरकार यह अपनापन हासिल करने की कहानी है। ऐसा अपनापन जो विरासत में नहीं मिला, बल्कि प्रेम से बना, दुखों की कसौटी पर परखा गया और जिम्मेदारियों के साथ मजबूत हुआ। अपने शब्दों में यह कहानी सुनाकर सोनिया गांधी ने राजनीति के पीछे छिपी एक ऐसी शख्सियत को जानने का मौका दिया है जिसने अपनी यात्रा में आए हर मुश्किल पड़ाव को अपने समर्पण, धैर्य और सहनशीलता से अपनी ताक़त बना लिया।

निजी दुख से सार्वजनिक जिम्मेदारी तक

सोनिया गांधी की राजनीतिक यात्रा के पीछे एक ऐसी महिला की कहानी है, जिसने असाधारण निजी त्रासदियां झेलीं और फिर भी आगे बढ़ने की ताकत जुटाई। राजनीति उनके लिए कभी आसान रास्ता नहीं रही। उन्होंने करीब से इसके दबाव और खतरों को देखा था और शुरुआत में इससे दूर रहना चाहती थीं।

अक्टूबर 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या परिवार के लिए बड़ा सदमा थी। इसके बाद मई 1991 में राजीव गांधी की हत्या ने एक और गहरा जख्म दिया।

राजीव गांधी की हत्या के बाद के दिनों को याद करते हुए वह लिखती हैं, "राजीव के जाने के बाद मेरे आसपास की हर चीज मेरे दुख की गूंज बन गई थी।" यह सिर्फ एक पूर्व प्रधानमंत्री की मौत नहीं थी। उन्होंने अपने पति, साथी और बच्चों के पिता को खो दिया था। परिवार को ऐसे हालात में जिंदगी दोबारा शुरू करनी पड़ी, जिसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। किताब के विमोचन के दौरान उन्होंने एक भावुक याद साझा की। उन्होंने कहा कि राजीव गांधी की मौत के बाद उन्हें ऐसा लगा जैसे वह खुद बच्ची बन गई हों और राहुल तथा प्रियंका उनके माता-पिता। परिवार में भूमिकाएं बदल गई थीं और बच्चे अपनी मां को संभालने लगे थे।

कई वर्षों तक सोनिया सक्रिय राजनीति से दूर रहीं। उन्होंने परिवार और राजीव गांधी की यादों को प्राथमिकता दी। लेकिन कांग्रेस की स्थिति और बदलते राजनीतिक हालात ने धीरे-धीरे उन्हें सार्वजनिक जीवन की ओर खींचा।

1997 में कांग्रेस में उनकी सक्रिय भूमिका और 1998 में पार्टी की कमान संभालना उनकी निजी राजनीतिक महत्वाकांक्षा का नतीजा नहीं था। इसके पीछे लंबा असमंजस और आंतरिक संघर्ष था। वह लिखती हैं, "मेरे अपने भारत से मेरा परिचय मेरे पति और मेरी सास के जरिए हुआ था।"

इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के मूल्यों ने उनके भीतर जिम्मेदारी की भावना को मजबूत किया। उस समय के राजनीतिक हालात ने भी उनके लिए दूर रहना मुश्किल बना दिया।

इस तरह राजनीति में उनका प्रवेश दुख, अनिश्चितता और उस जिंदगी में कदम रखने के कठिन फैसले से जुड़ा था, जिससे वह कभी दूर रहना चाहती थीं। उनकी कहानी बताती है कि नेतृत्व हमेशा सत्ता हासिल करने की महत्वाकांक्षा से पैदा नहीं होता। कई बार हालात इंसान को जिम्मेदारी उठाने के लिए मजबूर कर देते हैं। ■■■

इटली से भारत तक का वो सफर, जो जिंदगी भर का रिश्ता बन गया

कुछ सफर किसी मंजिल की तलाश में शुरू होते हैं, तो कुछ प्रेम से शुरू होकर अपनापन बन जाते हैं। सोनिया गांधी का भारत तक का सफर ऐसी ही कहानी है।

इटली के लुसियाना में जन्मीं और ओरबासानो में पली-बढ़ीं सोनिया का शुरुआती जीवन राजनीति की हलचल से दूर था। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में राजीव गांधी से मुलाकात ने उनकी जिंदगी की दिशा बदल दी। दो युवाओं के बीच शुरू हुआ रिश्ता धीरे-धीरे एक परिवार, देश और यहां के लोगों के प्रति जीवनभर की प्रतिबद्धता बन गया।

'Belonging' में सोनिया उन शुरुआती दिनों को याद करती हैं। एक अनजान समाज में आने की आशंकाओं और भारत को धीरे-धीरे अपना बनाने के अनुभवों का जिक्र करती हैं। 13 जनवरी 1968 को भारत पहुंचना उनकी जिंदगी में एक नए अध्याय की शुरुआत थी।

इंदिरा गांधी के साथ उनका रिश्ता भी किताब का अहम हिस्सा है। देश की ताकतवर प्रधानमंत्री के पीछे परिवार के भीतर रहने वाली एक महिला थीं, जिन्हें सोनिया ने करीब से जाना। वह पारिवारिक जिम्मेदारियों, सार्वजनिक कार्यक्रमों और इंदिरा गांधी के व्यक्तिगत स्नेह को याद करती हैं।

लेकिन भारत से उनका जुड़ाव सिर्फ राजनीतिक गलियारों तक सीमित नहीं रहा। राजीव गांधी के संसदीय क्षेत्र अमेठी के दौरे ने उन्हें ग्रामीण भारत की हकीकत से रूबरू कराया। वहां उन्होंने स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, जातिगत भेदभाव, पानी की समस्या और सीमित अवसरों से जूझती महिलाओं को देखा।

गांवों में लोग उनसे सवाल करते थे, उनकी बातों को सुधारते थे।समय के साथ इन मुलाकातों ने भारत के साथ उनके रिश्ते को और गहरा किया।

किताब के विमोचन के दौरान उन्होंने बताया कि गांवों में लोगों ने कभी उनके उच्चारण या साड़ी पहनने के तरीके को लेकर उन्हें नहीं परखा। उनके लिए यह मायने रखता था कि वह उनकी बात सुनने आई थीं।

यही 'Belonging' यानी अपनापन का असली अर्थ है। यह रिश्ता सिर्फ शादी या नागरिकता से नहीं बना, बल्कि अनुभवों, स्नेह, जिम्मेदारी और आम भारतीयों के साथ जुड़ाव से मजबूत हुआ।

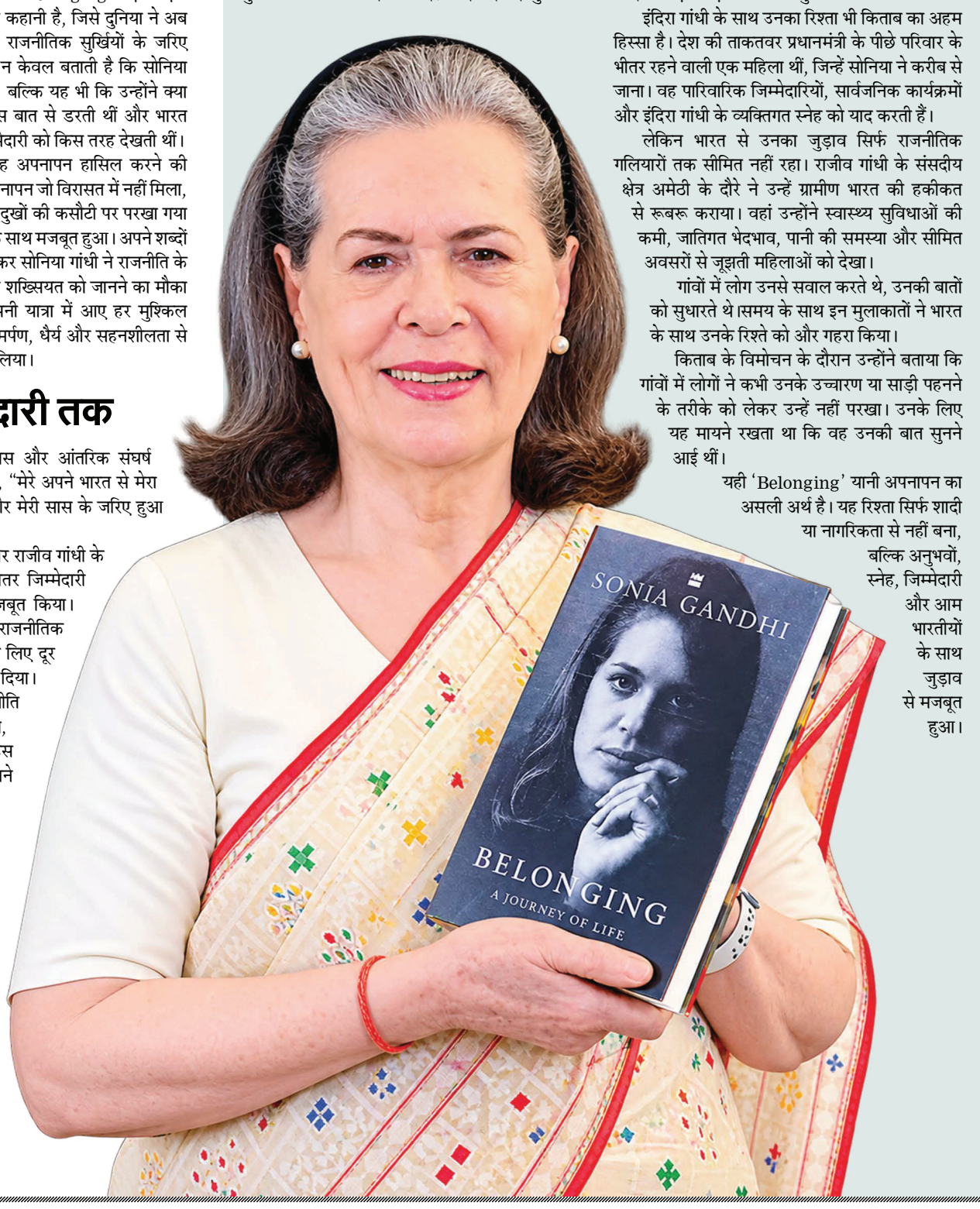

प्रधानमंत्री की कुर्सी से बड़ा था अंतरात्मा का फैसला

सोनिया गांधी का प्रधानमंत्री पद स्वीकार न करने का फैसला उनके राजनीतिक जीवन के सबसे अहम और व्यक्तिगत फैसलों में से एक रहा है। देश का सर्वोच्च पद उनके सामने था, लेकिन उन्होंने अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनते हुए इसे ठुकरा दिया।

2004 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति के लिए निर्णायक साबित हुआ। कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन ने जीत दर्ज कर बीजेपी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार को सत्ता से बाहर कर दिया। यह जीत सोनिया गांधी के लिए वर्षों की मेहनत, चुनाव प्रचार और अलग-अलग विचारधाराओं वाले दलों को साथ लाने का नतीजा थी। इसी प्रयास से संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) बना।

सोनिया गांधी ने रायबरेली से बड़े अंतर से चुनाव जीता, जबकि राहुल गांधी ने अमेठी से अपना पहला चुनाव जीता।

18 मई 2004 को कांग्रेस संसदीय दल ने सर्वसम्मति से सोनिया गांधी को अपना नेता चुना। सबको उम्मीद थी कि वह देश की अगली प्रधानमंत्री बनेंगी। पार्टी के नेताओं ने उनसे पद स्वीकार करने की अपील की, लेकिन उन्होंने अपना फैसला नहीं बदला।

अपनी किताब में वह संसद के सेंट्रल हॉल का माहौल याद करती हैं, जहां पार्टी के नेता लगातार उनसे फैसले पर दोबारा विचार करने व आग्रह कर रहे थे। वह लिखती हैं "राजनीति में अपने पिछले छह व के दौरान मेरे लिए एक बात हमेश स्पष्ट रही है। प्रधानमंत्री का पद मे लक्ष्य नहीं है।"

इसके बाद उन्होंने कहा, "" हमेशा से जानती थी कि अग कभी ऐसी स्थिति आई तो मैं अप अंतरात्मा की आवाज सुनूंगी। आ वह आवाज मुझसे कह रही है कि मु विनम्रतापूर्वक इस पद को ठुकरा दे चाहिए।"

उनके इस ऐलान पर पा नेताओं ने असहमति जताई औ उनसे फैसला बदलने की अपील की सोनिया बताती हैं कि भाषण के दौरा उनकी तबीयत बिगड़ गई और उन सांस लेने में परेशानी हुई। कुछ दे रुकने के बाद उन्होंने अपना संबोध पूरा किया।

उन्होंने साफ कहा, "सत्ता ने मु कभी आकर्षित नहीं किया और न ह पद मेरा लक्ष्य रहा है।"

उन्होंने अपनी राजनीति प्राथमिकता बताते हुए कहा, "मेर लक्ष्य हमेशा देश की धर्मनिरपेक्ष नीं और गरीबों की रक्षा करना रहा है यही इंदिराजी और राजीवजी के लि पवित्र विश्वास था।"

इसके बाद उन्होंने डॉ. मनमोह सिंह को प्रधानमंत्री पद के लि प्रस्तावित किया। अंतरराष्ट्रीय स्त पर पहचान रखने वाले अर्थशास्त्र और पूर्व वित्त मंत्री मनमोहन सिंह यूपीए सरकार का नेतृत्व किया।

इस व्यवस्था में मनमोहन सिं सरकार के प्रमुख बने, जबकि कांग्रे अध्यक्ष और यूपीए चेयरपर्सन के तौर पर सोनिया गांधी ने गठबंधन सहयोगी दलों के बीच तालमेल बना रखने की जिम्मेदारी संभाली।

अगले दिन पार्टी नेताओं व संदेश देते हुए उन्होंने स्पष्ट किय कि वह राजनीति से पीछे नहीं हट रह हैं। उन्होंने लिखा, "आज राजनीति सत्ता के बारे में है। आइए, दुनिया व दिखाएं कि कांग्रेस के लिए राजनीति मूल्यों और ईमानदारी का विषय है।

दो दशक से ज्यादा सम बाद भी उनका यह फैसला नेतृत्व महत्वाकांक्षा और सार्वजनिक सेवा के अर्थ पर चर्चा का विषय बना हुआ है 'Belonging' में सोनिया गांधी इस सिर्फ राजनीतिक फैसला नहीं, बल्कि अपनी अंतरात्मा के प्रति प्रतिबद्धता के रूप में याद करती हैं।

18 मई 2004 को कांग्रेस संसदीय दल ने सर्वसम्मति से सोनिया गांधी को अपना नेता चुना। सबको उम्मीद थी कि वह देश की अगली प्रधानमंत्री बनेंगी। पार्टी के नेताओं ने उनसे पद स्वीकार करने की अपील की, लेकिन उन्होंने अपना फैसला नहीं बदला।

सोनिया गांधी का भारत, जहां हर किसी को अपनापन मिले

आखिरी व्यक्ति तक न्याय पहुंचाने का संकल्प

सोनिया गांधी के लिए 2004 की चुनावी जीत सिर्फ सत्ता हासिल करने का मौका नहीं थी। वह इसे आम लोगों की जिंदगी बदलने वाले अधिकारों और नीतियों को लागू करने का अवसर मानती थीं। उनका मानना था कि आर्थिक विकास का कोई अर्थ नहीं, अगर गरीबों तक उसका लाभ न पहुंचे।

अपनी किताब 'Belonging' में वह लिखती हैं, "गरीब और कमजोर लोगों को विकास के लाभ का इंतजार अनिश्चितकाल तक नहीं करना चाहिए।"

कांग्रेस अध्यक्ष और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) की अध्यक्ष के रूप में उन्होंने ऐसे विकास मॉडल की पैरवी की, जिसमें आर्थिक सुधारों के साथ सामाजिक सुरक्षा भी सुनिश्चित हो।

जून 2004 में प्रधानमंत्री की ओर से गठित एनएसी में शिक्षाविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों को शामिल किया गया था। इसका उद्देश्य यूपीए के चुनावी वादों को कानून का रूप देने में मदद करना था। इस परिषद के पास सीधे फैसले लेने का अधिकार नहीं था, लेकिन इसकी कई सिफारिशें ऐतिहासिक कानूनों में बदलीं।

सोनिया लिखती हैं, "एनएसी में चर्चा के लिए लाए गए सभी कानूनी मुद्दों का एक ही उद्देश्य था-सरकार के सक्रिय हस्तक्षेप से आर्थिक और सामाजिक अन्याय को दूर करना।"

इस दिशा में सबसे अहम कदम मनरेगा था। सितंबर 2005 में बने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून के तहत ग्रामीण परिवारों को एक वित्त वर्ष में 100 दिन तक मजदूरी पर आधारित रोज़गार देने की गारंटी दी गई। इससे ग्रामीण परिवारों को खेती के कम काम वाले समय में रोजगार मिला और कुएं तथा तालाब जैसी सामुदायिक संपत्तियां भी बनीं। सोनिया गांधी के मुताबिक, कोविड संकट के दौरान भी मनरेगा लाखों प्रवासी मजदूरों के लिए आजीविका का बड़ा सहारा बना, जिन्होंने अपनी नौकरियां गंवा दी थीं। सूचना का अधिकार (आरटीआई) कानून भी इस दौर का बड़ा सुधार था। इसने आम नागरिकों को सरकारी विभागों से जानकारी मांगने का अधिकार दिया और शासन में पारदर्शिता तथा जवाबदेही मजबूत की।

खाद्य सुरक्षा भी उनकी प्राथमिकताओं में शामिल थी। इस कानून को लेकर सरकारी खर्च और अनाज की उपलब्धता पर सवाल उठे, लेकिन सोनिया ने प्रधानमंत्री और वरिष्ठ नेताओं के साथ चर्चा में इसकी जरूरत पर जोर दिया। आखिरकार 2013 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून बना, जिसके तहत पात्र परिवारों को रियायती दरों पर अनाज उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया।

उनका सवाल था कि पर्याप्त खाद्य संसाधन होने के बावजूद देश के गरीबों को भूख के जोखिम में क्यों रहना चाहिए।

शिक्षा के अधिकार कानून ने 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को कानूनी अधिकार बनाया। महिलाओं और वन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों के अधिकार भी एनएसी के व्यापक एजेंडे का हिस्सा थे।

हालांकि, सोनिया का जोर सिर्फ कानून बनाने पर नहीं था। वह चाहती थीं कि उनका लाभ वास्तव में जरूरतमंदों तक पहुंचे। उन्हें चिंता थी कि बिचौलिए और स्थानीय ताकतवर लोग कल्याणकारी योजनाओं का फायदा रोक सकते हैं।

वह लिखती हैं, "अच्छे इरादे और अच्छी तरह बनाए गए कानून भी बेजान रह सकते हैं, अगर यह सुनिश्चित न हो कि मदद कतार में खड़े आखिरी व्यक्ति तक पहुंचे।"

उनके मुताबिक विकास का आकलन सिर्फ आर्थिक वृद्धि से नहीं, बल्कि रोजगार, भोजन, शिक्षा और सूचना जैसे अधिकारों तक आम लोगों की पहुंच से होना चाहिए।

'Belonging: A Journey of Love' सिर्फ सोनिया गांधी के राजनीतिक जीवन की कहानी नहीं है। यह एक महिला के अलग-अलग देशों, संस्कृतियों और पीढ़ियों से गुजरते सफर के साथ उस भारत की भी तस्वीर पेश करती है, जिसे उन्होंने अपना बनाया।

सोनिया के लिए अपनापन सिर्फ जन्मस्थान से तय नहीं होता। यह स्वीकार्यता, साझा अनुभवों और रिश्तों से बनता है। इटली से भारत आना, नेहरू-गांधी परिवार का हिस्सा बनना, निजी दुखों से गुजरना और राजनीति में कदम रखना इसी सफर के पड़ाव हैं।

किताब में धर्मनिरपेक्षता, बहुलवाद, लोकतांत्रिक स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों पर भी जोर है। यह भारत की विविधता को उसकी ताकत मानने वाली कांग्रेस की विचारधारा को भी सामने रखती है।

किताब के विमोचन के दौरान राहुल गांधी ने अपनी मां को एक बेटे की नजर से याद किया। उन्होंने एक भावुक संदेश में लिखा, "अगर आप सोनिया गांधी को जानना चाहते हैं, तो एक बार उन्हें मेरी नजरों से देखिए।" उन्होंने अपनी मां के साहस, संवेदनशीलता और मुश्किलों के बावजूद प्रेम के साथ जिंदगी जीने की क्षमता का जिक्र किया।

कार्यक्रम में राहुल ने अपने माता-पिता के रिश्ते को याद करते हुए कहा, "वह मेरे पिता की थीं और मेरे पिता उनके थे।" उन्होंने यह भी कहा कि राजीव गांधी को अपनी पत्नी पर बहुत गर्व होता।

प्रियंका गांधी वाड्रा ने भी कहा कि उन्हें खुशी है कि उनकी मां को आखिरकार अपनी कहानी अपने शब्दों में कहने का मौका मिला।

सोनिया गांधी ने 2024 के लोकसभा चुनाव और विपक्षी दलों के INDIA गठबंधन के गठन को भी इसी व्यापक सोच से जोड़ा है। अलग-अलग विचारधाराओं वाले दलों को साथ लाने के लिए आपसी समझ और साझा उद्देश्य जरूरी था। उनके मुताबिक यह लोकतांत्रिक संस्थाओं, संवैधानिक मूल्यों और देश की विविधता की रक्षा की जिम्मेदारी का हिस्सा है। इसी भावना को राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा का नारा भी व्यक्त करता है- "नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान खोलो।" किताब को पाठकों का अच्छा प्रतिसाद मिला। विमोचन के दौरान हार्पर कॉलिन्स इंडिया के सीईओ अनंत पद्मनाभन ने बताया कि एक सप्ताह से भी कम समय में इसकी दो लाख से अधिक प्रतियां बिक चुकी थीं। आखिरकार यह किताब प्रेम, बिछड़ने, संघर्ष और सार्वजनिक जिम्मेदारी से बनी जिंदगी की कहानी है। इसमें निजी और राजनीतिक जीवन को अलग-अलग नहीं देखा गया है, बल्कि बताया गया है कि परिवार, यादों और अनुभवों ने सोनिया गांधी की भारत के प्रति सोच को कैसे आकार दिया। इसका संदेश किसी एक परिवार या राजनीतिक दल तक सीमित नहीं है। यह ऐसे भारत की कल्पना है, जहां किसी की पहचान उसके अधिकार और जगह तय न करे, विविधता का सम्मान हो, लोकतांत्रिक आजादी सुरक्षित रहे और हर नागरिक को अपनापन महसूस हो।

यही 'Belonging' का मूल विचार है और पाठकों के सामने छोड़ा गया सवाल भी-हम ऐसे भारत को कैसे बनाए रखें, जहां हर व्यक्ति को लगे कि यह देश उसका अपना है?

सोनिया गांधी ने 2024 के लोकसभा चुनाव और विपक्षी दलों के INDIA गठबंधन के गठन को भी इसी व्यापक सोच से जोड़ा है। अलग-अलग विचारधाराओं वाले दलों को साथ लाने के लिए आपसी समझ और साझा उद्देश्य जरूरी था। उनके मुताबिक यह लोकतांत्रिक संस्थाओं, संवैधानिक मूल्यों और देश की विविधता की रक्षा की जिम्मेदारी का हिस्सा है।

एक बार फिर अडानी को ही तरजीह

ओडिशा ने टाटा के छोटे मॉड्यूलर रिएक्टरों के प्रस्ताव के बजाय अडानी के 3,000 मेगावाट वाले परमाणु संयंत्रों को क्यों चुना?

एन. आर. मोहंती

महज दो बैठकें और दो महीने से भी कम का वक्त। ओडिशा की भाजपा सरकार को अडानी समूह द्वारा प्रस्तावित दो विशाल परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को मंजूरी देने में बस इतना ही समय लगा। अंदरूनी कलह से लगभग पंगु हो चुके प्रशासनिक तंत्र ने जिस असाधारण फुर्ती से यह फैसला लिया, वह राजनीतिक प्रेक्षकों की नजरों से छिपा नहीं रहा। 30 जुलाई को ऊर्जा मंत्री के. वी. सिंह देव के साथ करण अडानी की पहली औपचारिक बैठक हुई। 13 अगस्त को दूसरी बैठक हुई, जिसमें अडानी समूह के उत्तराधिकारी ने मुख्यमंत्री से भी मुलाकात की। और 23 सितंबर को दोनों संयंत्रों को हरी झंडी दिखा दी गई।

मोहन माझी सरकार ने ऐसी तेजी किसी अन्य औद्योगिक घराने के प्रस्ताव पर नहीं दिखाई। राज्य के ऊर्जा सचिव विशाल कुमार देव ने स्वीकार किया कि दिसंबर 2025 में मोदी सरकार द्वारा 'शांति' (सस्टेनेबल हार्नेसिंग एंड एडवांसमेंट ऑफ न्यूक्लियर एनर्जी फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) अधिनियम पारित किए जाने के तुरंत बाद अडानी और टाटा दोनों समूहों ने प्रस्ताव सौंपे थे। गौरतलब है कि यह नया कानून निजी क्षेत्र को परमाणु ऊर्जा संयंत्रों की मिल्कियत रखने और उनके संचालन की वैधानिक छूट देता है।

पूरे ओडिशा राज्य में बिजली वितरण का जिम्मा संभालने वाली टाटा पावर ने मलकानगिरि जिले में 200-200 मेगावाट की चार छोटी परमाणु इकाइयां लगाने में दिलचस्पी दिखाई थी। ये 'स्मॉल माड्यूलर रिएक्टर' (एसएमआर) पारंपरिक परमाणु संयंत्रों के संक्षिप्त और आधुनिक रूप हैं। परमाणु विशेषज्ञों का स्पष्ट मत रहा है कि भारत जैसे घनी आबादी वाले मुल्क में एसएमआर तकनीक ही सबसे उपयुक्त विकल्प है, क्योंकि इसमें स्थानीय आबादी के विस्थापन और पर्यावरण के नुकसान की संभावना न्यूनतम होती है।

हकीकत तो यह है कि ओडिशा सरकार के अपने रणनीतिक नीति दस्तावेजों- 'विजन 2036' और 'विजन 2047'-में भी एसएमआर को ही वह उपयुक्त तकनीक माना गया है, जो अगले दो दशकों में राज्य को स्वच्छ ऊर्जा का प्रमुख केन्द्र बना सकती है। इसके विपरीत, अडानी समूह ने 2,800 से 3,000 मेगावाट की दो महापरियोजनाओं का प्रस्ताव रखा था-एक मलकानगिरि जिले के बालीमेला बांध के पास और दूसरी अनुगुल जिले के मारजोरी बांध के निकट। इन दोनों ही विशालकाय परियोजनाओं के लिए बड़े पैमाने पर स्थानीय आदिवासियों और ग्रामीणों की बेदखली करनी होगी। सरकार के अपने विजन दस्तावेजों से पूरी तरह मेल खाने के बाद भी टाटा पावर के प्रस्ताव को दरकिनार कर दिया गया।



राज्य सरकार द्वारा दो 3000 मेगावाट के परमाणु संयंत्रों को हरी झंडी दिए जाने से पहले, ओडिशा के उपमुख्यमंत्री के साथ अडानी समूह की टीम

वर्ष 2025 में भारत की कुल बिजली का 27 प्रतिशत स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों से उत्पादित हुआ, जिसमें परमाणु ऊर्जा का योगदान मात्र तीन प्रतिशत के करीब था। देश की लगभग नौ प्रतिशत बिजली पनबिजली संयंत्रों से आती है, जबकि सौर ऊर्जा (नौ प्रतिशत) और पवन ऊर्जा (छह प्रतिशत) मिलकर कुल आपूर्ति का पंद्रह प्रतिशत हिस्सा बनाती हैं। विशेषज्ञ मानते हैं कि अल्पावधि में सौर और पवन ऊर्जा के उत्पादन को रातों-रात बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ाना तकनीकी रूप से आसान नहीं है। लेकिन ग्रिड से जुड़ी इन ढांचागत दिक्कतों को आधुनिक तकनीकों से सुलझाया जा सकता है; वाणिज्यिक और घरेलू दोनों जरूरतों के लिए बैटरी स्टोरेज पवन और सौर ऊर्जा का टिकाऊ विकल्प दे सकती है।

अधिकतर ऊर्जा विशेषज्ञ मानते हैं कि जीवाश्म ईंधन से इतर विकल्पों में सौर और पवन ऊर्जा को ही प्राथमिकता मिलनी चाहिए, न कि परमाणु परियोजनाओं को, जो स्थानीय गरीबों से उनकी जमीन और आजीविका दोनों छीनकर बड़े पैमाने पर विस्थापन थोपती हैं। इसके अलावा, परमाणु विकिरण और रिसाव का वह भयानक अंदेशा तो बना ही रहता है, जिसकी जद में आने पर लाखों जिंदगियां तबाह हो सकती हैं। क्या निजी कंपनियों के हाथों में इतना बड़ा जानलेवा जोखिम सौंपा जाना चाहिए? क्या अडानी समूह को प्राथमिकता देने से पहले ओडिशा सरकार ने इसके नफे-नुकसान को तौला और स्वतंत्र विशेषज्ञों से कोई परामर्श किया?

दो महीने से भी कम समय में हुई दो बैठकों में ही भाजपा सरकार ने दो परमाणु संयंत्रों को मंजूरी दे दी

सार्वजनिक सुरक्षा की दृष्टि से किसी भी परमाणु संयंत्र के लिए असाधारण सावधानियां जरूरी होती हैं। किसी बड़े परमाणु हादसे की स्थिति में उसका आर्थिक हर्जाना इतना बड़ा हो सकता है कि इसी डर से परमाणु बिजली को कभी बहुत अधिक मुनाफा देने वाला सुरक्षित कारोबार नहीं माना गया। पिछले सात दशकों में भारत किसी बड़े परमाणु संकट से इसलिए बचा रहा, क्योंकि देश के तमाम परमाणु संयंत्र पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र और सरकारी निगरानी के अधीन रहे। परमाणु जोखिम का खतरा इतना संवेदनशील है कि अमेरिका ने भी आज तक निजी क्षेत्र को इस दायरे में दखल नहीं देने दिया। व्लादिमीर पुतिन के रूस में, जहां क्रोनी पूंजीवाद संस्थागत रूप ले चुका है, राष्ट्रपति ने अपने चहेते उद्योगपतियों को भी परमाणु क्षेत्र में पैर पसारने की इजाजत नहीं दी है।

जापान इसका अपवाद है, जहां निजी कंपनियों को परमाणु संयंत्र लगाने की अनुमति तो मिली, लेकिन उसके लिए देनदारी के नियम बेहद कड़े रखे गए। वर्ष 2011 की फुकुशिमा परमाणु त्रासदी के बाद दायइची में 1,800 मेगावाट के संयंत्र की मालिक तोक्यो पावर कंपनी को 187 अरब डॉलर (लगभग 18 लाख करोड़ रुपये) का हर्जाना भरना पड़ा था। इसके बरक्स भारत में, 3,000 मेगावाट के संयंत्र में दुर्घटना होने पर नरेन्द्र मोदी सरकार ने निजी आपरेटरों के लिए अधिकतम देनदारी की सीमा मात्र 1,500 करोड़ रुपये तय की है। यह तुलना हास्यास्पद है। तोक्यो पावर कंपनी को जिस नुकसान के लिए एक लाख रुपये चुकाने पड़े, भारत में निजी कंपनियों को उसी अनुपात में मात्र 100 रुपये देने होंगे।

चूंकि कानून के तहत 3,600 मेगावाट या उससे अधिक के संयंत्रों के लिए हादसे की स्थिति में अधिकतम देनदारी 3,000 करोड़ रुपये है, इसलिए अडानी समूह ने रणनीतिक चतुराई दिखाते हुए ठीक निचला स्लैब चुना है!

जब आपरेटरों के लिए वित्तीय जोखिम को इतना सीमित कर दिया गया हो, तो निजी घरानों का परमाणु क्षेत्र की ओर टूटना कोई अचरज की बात नहीं है। यह खेल अडानी समूह जैसे घरानों के लिए दोहरा लाभ देने वाला है, जो अंतरराष्ट्रीय साझेदारों के साथ मिलकर डाटा सेंटर कारोबार में तेजी से दबदबा बना रहे हैं। डाटा सेंटर भारी मात्रा में बिजली खाते हैं, और जब बिजली की मांग चरम पर होगी तो फायदा किसका होगा? परमाणु ऊर्जा संयंत्र और डाटा सेंटर-पैसों से भरे कारपोरेट घरानों के लिए यह आपसी साठगांठ का दोहरा लाभ का सौदा है।

इतिहास गवाह है कि केवल सरकारी स्वामित्व होना भी पूर्ण सुरक्षा की गारंटी नहीं है। अप्रैल 1986 का चेर्नोबिल हादसा आज भी परमाणु ऊर्जा के इतिहास का सबसे काला पन्ना बना हुआ है। पूरी तरह सोवियत सरकार के नियंत्रण में चल रहे उस संयंत्र में हुआ धमाका तकनीकी खामी और इंसानी लापरवाही के जानलेवा मेल का नतीजा था। ग्रीनपीस द्वारा जुटाए गए विश्वविख्यात वैज्ञानिकों का अनुमान था कि विकिरण के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष असर से लगभग 90,000 लोगों की अकाल मौत हुई। संयंत्र के आसपास के क्षेत्रों में विकिरण के मानवीय सहनशीलता के स्तर तक नीचे आने में लगभग 20,000 साल लगने का अनुमान लगाया गया। उस हादसे के दशकों बाद तक समूचे यूरोप में बच्चों को थायराइड- कैंसर जैसी घातक बीमारियों ने जकड़े रखा।

चेर्नोबिल संयंत्र जिस शहर में था, उसकी पूरी आबादी को रातों-रात बेघर होना पड़ा। संयंत्र के चारों तरफ 30 किलोमीटर का प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित किया गया और 1,50,000 से अधिक विस्थापितों को बसाने के लिए स्लावुतिच नामक नया शहर बसाना पड़ा। प्रभावित लोगों को जीवन भर वित्तीय और चिकित्सा सहायता देनी पड़ी। मलबे को साफ करने के लिए सैनिकों, खनिकों और इंजीनियरों सहित 6,00,000 राहतकर्मियों को झोंका गया। इस प्रक्रिया में वे खुद घातक विकिरण की चपेट में आए और उन्हें जीवन भर जोखिम भत्ता तथा स्वास्थ्य सुविधाएं दी गईं। अनुमान है कि तीन दशकों के दौरान चेर्नोबिल त्रासदी से सोवियत खजाने को 700 अरब डॉलर से अधिक का नुकसान हुआ-जो आज की कीमतों में लगभग 70 लाख करोड़ रुपये बैठता है।

ओडिशा और अन्य राज्यों को शांति अधिनियम में अंतर्निहित उन गंभीर खतरों को पहचानना होगा, जो मुनाफे का तो निजीकरण करते हैं लेकिन नुकसान का बोझ जनता पर डाल देते हैं। भारत में, भगवान न करे कि कोई बड़ा हादसा हो, उस तबाही की पूरी कीमत निजी संचालक नहीं बल्कि आम करदाता चुकाएगा। ■

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास



इन सबके लिए सर्वोत्तमः
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम



ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051

...तो चीफ जस्टिस को नहीं देनी पड़ती नसीहत

जस्टिस चंद्रू जैसों की जरूरत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को भी कम नहीं

कृष्ण प्रताप सिंह

अपने देश में राजनीति और नौकरशाही कहें या व्यवस्था और कार्यपालिका, उनमें आए विचलनों की चर्चाएं बहुत पहले से आम रहती आई हैं। अब न्यायपालिका के विचलन भी खूब चर्चित हो रहे हैं। इस कदर कि गत 22 नवंबर को चीफ जस्टिस न्यायमूर्ति सूर्यकांत को हिमाचल प्रदेश स्थित धर्मशाला में हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय के 10वें दीक्षांत समारोह में यह तक कहना पड़ा कि लोगों को संवैधानिक संस्थाओं के फैसलों की आलोचना करने का अधिकार तो है और वे उसका इस्तेमाल भी कर सकते हैं, लेकिन पूरी संस्था को निशाना बनाने से बचा जाना चाहिए।

इसके बावजूद न्याय और कानून के क्षेत्र से जुड़ी शख्सियतों द्वारा जाने अनजाने उनसे किए गए खिलवाड़ के जैसे वाकये चर्चा में हैं, उनके मद्देनजर गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्व जस्टिस के. चन्द्रू की चर्चा करना जरूरी लगता है। यह कहना भी कि उनकी जैसी शख्सियतों की कमी ही है, जो न्यायपालिका और न्यायाधीशों की शुचिता के प्रति जन विश्वास को उसके न्यूनतम स्तर पर ला रही और पूरी संस्था को कठघरे में खड़ी करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही है।

यह कहना भी जरूरी है कि आज भले ही जस्टिस चंद्रू जैसी शख्सियतें किसी की रोल मॉडल न रह गई हों, कभी इस क्षेत्र में उन जैसों की उपस्थिति इस बात का उद्घोष हुआ करती थी कि पूरे कुएं में भांग नहीं पड़ी है और कुछ मछलियां सारे तालाब के भविष्य का निर्धारक नहीं हो सकतीं।

प्रसंगवश, वकालत की अपनी पारी को विराम देकर जस्टिस चंद्रू 31 जुलाई 2006 को मद्रास उच्च न्यायालय के जज बने तो मामलों की सुनवाई और फैसलों की गति ही नहीं तेज की, न्याय जगत की कई पुरानी औपनिवेशिक परंपराओं और दकियानूसी रूढ़ियों को भी तोड़ डाला। साथ ही कई नई और स्वस्थ परंपराओं का निर्माण किया। अपने कुछ सालों के ही कार्यकाल में उन्होंने प्रतिदिन औसतन 75 मामलों की सुनवाई की और 96,000 से ज्यादा मामले सुलझाए। अब तक किसी भी अन्य जज के लिए उनका यह रिकॉर्ड तोड़ना संभव नहीं हुआ है।

लेकिन उन्हें केवल इस रिकॉर्ड के लिए ही नहीं जाना जाता। जिस दिन उन्होंने अपने पद की शपथ ली थी, तत्कालीन चीफ जस्टिस एचएन गोखले को उसी दिन अपनी संपत्ति का ब्यौरा दे दिया था और सेवानिवृत्ति के दिन भी कार्यवाहक चीफ जस्टिस आर. के. अग्रवाल को देने में देर नहीं की थी। पदमुक्त होने के तुरंत बाद उन्होंने अपनी कार लौटा दी थी, फेयरवेल टी और फाइवस्टार डिनर स्वीकारने से हाथ जोड़ लिए थे और आम नागरिक की तरह ट्रेन में बैठकर अपने घर चले गए थे। निजी सुरक्षा अधिकारी रखने से तो यह कहकर पहले ही इनकार कर दिया था कि यह स्टेटस सिंबल हो गया है।

जानकारों के अनुसार, 1929 के बाद यह पहला अवसर था जब किसी जज ने ऐसा कदम उठाया था। कार्यवाहक चीफ जस्टिस को पत्र लिखकर उन्होंने पहले ही निवेदन कर दिया था कि 'मेरी इच्छा है कि मेरी सेवानिवृत्ति का दिन भी आम दिनों जैसा ही बीत जाए!' उसी दिन लिए गए अपने इस संकल्प पर वह अभी भी कायम हैं कि सेवानिवृत्ति के बाद जजों को मिलने वाले ट्रिब्यूनल या कमीशन की अध्यक्षता के 'दूसरी नौकरी' जैसे लाभ नहीं लेंगे।

जज रहते उन्होंने अपने चैंबर के बाहर लिखवा रखा था-'यहां किसी देवी या देवता की मूर्ति नहीं है, इसलिए फूल न ले आएं। कोई भूखा नहीं है और ठिठुर नहीं रहा। इसलिए फल और शॉल भी न लाएं!' वह इस बात को सख्ती से नापसंद करते थे कि जज के तौर पर उन्हें पावर और अथारिटी का प्रतीक माना जाए और औपनिवेशिक काल की तरह उनके आने की सूचना कोई लाल टोपी और चांदी का पट्टा पहनने वाला दे।

जज के रूप में अपने फैसलों में उन्होंने जो स्थापनाएं और व्यवस्थाएं दीं, हमारे लोकतांत्रिक ढांचे के लिहाज से वे बड़े ही दूरगामी महत्व की हैं। मसलनः सभाएं करना नागरिकों का मूल अधिकार है और धरने एवं प्रदर्शनों के लिए पुलिस की इजाजत लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। कानूनी तौर पर किसी महिला को महिला होने के कारण किसी मंदिर में पूजा करने से नहीं रोका जा सकता! मध्याह्न भोजन केन्द्रों की नौकरियों में भी समुदाय आधारित आरक्षण होना चाहिए और अंतिम संस्कार के लिए बिना जातीय भेदभाव के सबके लिए एक ही श्मशानगृह होना चाहिए।

उनके प्रारंभिक जीवन पर जाएं तो हम पाते हैं कि वह प्रायः बेहतर के लिए विद्रोह के रास्ते पर चलते रहे हैं। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ने से पहले वह स्टूडेंट्स सोशलिस्ट फोरम चलाते थे और बाद में स्टूडेंट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया में शामिल हो गए। मद्रास क्रिश्चियन कालेज से उन्हें इसलिए निकाल दिया गया था क्योंकि उन्होंने मद्रास रबड़ फैक्टरी के प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच विवादों के समाधान के लिए बुलाई गई बैठक में कर्मचारियों की ओर से भाग लिया था। फैक्टरी के प्रबंधक ही कालेज के भी प्रबंधक थे और चंद्रू को पता था कि उनके 'कुसूर' को क्षमा नहीं किया जाएगा। फिर भी उन्होंने यह जोखिम उठाया।

1976 में कानून की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने मद्रास उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस शुरू की और लंदन से पढ़कर आए चेन्नई के प्रसिद्ध वामपंथी बैरिस्टर और मजदूर नेता वी जी राव के नेतृत्व में राव एंड रेड्डी लॉ फर्म ज्वाइन की। आपातकाल में चेन्नई केन्द्रीय कारागार में हुए अत्याचारों की जांच के लिए बने जस्टिस इस्माइल आयोग के सामने वह माक्र्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से खड़े हुए तो सारी नजरें उन्हीं पर थीं।

लाइव लॉ को दिए एक साक्षात्कार में वह कहते हैं, 'मुझे नहीं लगता कि राजनीतिक लोकतंत्र में कोई भी व्यक्ति अराजनीतिक हो सकता है। राजनीतिक लोकतंत्र को मजबूत आधार प्रदान करने के लिए राजनीति की सही समझ एक आवश्यक आधार है। अगर एक वकील राजनीति को समझता है तो उसके लिए कानून के कामकाज और कानून को संचालित करने वाली राजनीतिक मशीन को समझना आसान होगा। इसी तरह एक जज जो राजनीतिक स्थिति से अनभिज्ञ है, कई मामलों में, विशेषकर उनकी पृष्ठभूमि समझने में, उसके गुमराह होने की संभावना रहती है।'

वह पहले वकील, फिर सेवानिवृत्त जज के रूप में सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ते रहे हैं। 1993 में तमिलनाडु के कुड्डालोर जिले में पुलिस ने अंडाई कुरुंबर जनजाति के राजाकन्नू को हिरासत में लेकर मार डाला था। तब उसकी दर-दर की खाक छानकर हार गई पत्नी पार्वती को इंसाफ दिलाने के लिए उन्होंने तेरह साल लंबी कानूनी लड़ाई लड़ी और जीती थी। तब राजाकन्नू के हत्यारे पलिस अफसरों को चैदह साल के कठोर कारावास से दंडित किया गया था।

प्रसंगवश, जस्टिस वी. रामास्वामी द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के चीफ जस्टिस रहते हुए किए गए जिन कृत्यों को लेकर 10 मई 1993 को लोकसभा में महाभियोग प्रस्ताव आया और जरूरी बहुमत न जुटा पाने के कारण विफल रहा, उनकी ओर सबसे पहले जस्टिस चंद्रू ने ही उंगली उठाई थी। उन्होंने इस बाबत मुंबई से प्रकाशित जर्नल 'लायर्स कलेक्टिव' में लेख लिखा था। वह इस जर्नल की संपादकीय टीम में थे। बाद में रामास्वामी के खिलाफ आंदोलन शुरू हुए तो जस्टिस चंद्रू ने प्रख्यात अधिवक्ता इंदिरा जयसिंह के साथ मिलकर उनका नेतृत्व किया था।

अंत में एक मनीषी के शब्द उधार लेकर कहें तो आगे की राह सूझनी बंद हो जाने पर बिना सोचे-समझे पीछे की ओर लौट जाने में समझदारी नहीं होती और उस व्यक्ति को छोड़कर कोई भी दया का पात्र नहीं, जिसका भविष्य उसके पीछे और भूतकाल आगे चलता है। धर्मग्रंथों के हजारों हजार उपदेशों से कहीं ज्यादा सार्थक वह जीवन होता है जो खुद से संघर्ष की शुरुआत करे और नजीर बन जाए।

जस्टिस चंद्रू एक ऐसी ही नजीर हैं और हमारी आज की न्यायपालिका को उनकी जैसी और भी अनेक वजीरों की जरूरत है। यह जरूरत पूरी हो जाए तो शायद चीफ जस्टिस सूर्यकांत की नसीहत के बगैर भी संस्थान के तौर पर न्यायपालिका लोगों की आलोचना से बची रहे और उसमें लोगों का विश्वास तेजी से बढ़ने लग जाए। वैसे, जस्टिस चंद्रू जैसों की जरूरत तो व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को भी कम नहीं ही है। ■





धर्मशाला में हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में चीफ जस्टिस न्यायमूर्ति सूर्यकांत (बाएं से दूसरे) और अन्य। (इनसेट) मद्रास हाईकोर्ट के पूर्व जस्टिस न्यायमूर्ति के. चंद्रू

अगर न्यायमूर्ति चंद्रू जैसी नज़ीरें और भी हो जाएं तो चीफ जस्टिस सूर्यकांत की नसीहत के बगैर भी संस्थान के तौर पर न्यायपालिका लोगों की आलोचना से बची रहे

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 15 October 2026

NATIONAL HERALD ON SUNDAY | संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com



Commercial Display (w.e.f 15 October 2026)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition) NH(NE)	(Mumbai) NH(M)	Sunday Navjivan (National Edition) SNJ	Combined Rate
Full Page (1702 sq.cm)	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	Rs 8.65 Lakh	NH(NE)+NH(M)+SNJ Full Page Rs 22 Lakh
Half Page (852 sq. cm)	Rs 5 Lakh	Rs 4 Lakh	Rs 5 Lakh	
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 2.40 Lakh	Rs 1.60 Lakh	Rs 2.40 Lakh	NH(NE)+NH(M) Full Page Rs 17 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 600	Rs 400	Rs 600	

PAGE PREMIUM	Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
Front page	100% Surcharge	100% Surcharge
page (3 & back)	25% Surcharge	25% Surcharge
Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 15 October 2026

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.

संडे नवजीवन
रविवार, 29 नवंबर, 2026 I www.navjivanindia.com
Published Date 29 November, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

पाठकीय संसार और हिन्दी की जासूसी परंपरा

लुगदी साहित्य की लोकप्रियता को समझना उस समाज को समझना है जिसने उसे पढ़ा, अपनाया और साथी बनाया

शैलेंद्र चौहान



किशोरावस्था में मैंने रूमानी और जासूसी उपन्यास खूब पढ़े। उस समय पढ़ने की कोई एक निर्धारित साहित्यिक रुचि नहीं थी। एक तरफ प्रेमचंद, शरतचंद्र, यशपाल और दूसरे साहित्यिक लेखकों की पुस्तकें पढ़ता था, दूसरी तरफ रहस्य, रोमांच, प्रेम, अपराध और तिलिस्म की दुनिया में ले जाने वाले लोकप्रिय उपन्यास भी उतने ही उत्साह से पढ़ता था। उस उम्र में इन दोनों तरह के साहित्य के बीच कोई दीवार नहीं थी। जो पुस्तक हाथ लग जाती, पढ़ने की इच्छा पैदा करती और अपने कथानक में बांध लेती, उसे पढ़ डालता था। उस समय यह सवाल भी नहीं उठता था कि कौन पुस्तक गंभीर साहित्य है और कौन हल्का या बाजारू साहित्य। यह विभाजन बाद में साहित्यिक संस्कारों और आलोचनात्मक मान्यताओं के साथ समझ में आया।

आज पीछे मुड़कर देखता हूं तो उन उपन्यासों की लोकप्रियता आश्चर्यचकित करती है। आखिर ऐसा क्या था कि लाखों पाठक उन्हें पढ़ने के लिए उत्सुक रहते थे? रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों, छोटी दुकानों और फुटपाथों पर बिकने वाली इन पुस्तकों की मांग इतनी अधिक कैसे थी? इनके लेखक साहित्यिक प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों और आलोचकों की मान्यता के बिना इतना विशाल पाठक समुदाय कैसे तैयार कर सके? क्या इन उपन्यासों में केवल विशुद्ध मनोरंजन, भावुकता, रहस्य, रोमांच, फैंटेसी और टाइमपास ही था या इनके भीतर अपने समय के समाज, उसकी आकांक्षाओं, भय, कुंठाओं और अंतर्विरोधों के कुछ ऐसे सूत्र भी मौजूद थे जिनकी पड़ताल अभी बाकी है?

मेरा मानना है कि लुगदी साहित्य को सिरे से खारिज करने के बजाय उसकी लोकप्रियता के कारणों का गंभीर अध्ययन किया जाना चाहिए। लोकप्रियता अपने आप में साहित्यिक श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं है, लेकिन किसी साहित्यिक विधा का व्यापक सामाजिक प्रभाव भी कोई मामूली बात नहीं है। आखिर वह साहित्य, जिसे हमारा तथाकथित साहित्यिक लोकवृत्त लोकप्रिय, बाजारू, घटिया, घासलेटी, सड़क या पटरी छाप, सतही, लुगदी अथवा चवन्नी छाप कहकर आसानी से नकार देता है, समाज के किस हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है? वह किस तरह की संस्कृति का निर्माण करता है?

हिन्दी में लोकप्रिय उपन्यासों की परंपरा को समझने के लिए बाबू देवकीनंदन खत्री से शुरुआत करना स्वाभाविक है। उनके उपन्यास चंद्रकांता ने हिन्दी पाठकों की एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। इसके बाद चंद्रकांता संतति, भूतनाथ, काजर की कोठरी, नरेन्द्र-मोहिनी, कुसुम कुमारी, वीरेन्द्र वीर और दूसरी रचनाओं ने उनकी लोकप्रियता को व्यापक बनाया।

गोपालराम गहमरी ने हिन्दी में जासूसी उपन्यासों की परंपरा को आगे बढ़ाया। उनके नाम से दो सौ से अधिक उपन्यासों का उल्लेख मिलता है। गहमरी की विशेष उपलब्धि यह थी कि उन्होंने जासूसी कथा को हिन्दी के सामान्य पाठक तक पहुंचाया।

हिन्दी-उर्दू के लोकप्रिय जासूसी साहित्य की चर्चा इब्ने सफी के बिना अधूरी है। इब्ने सफी ने जासूसी कथा को हास्य, व्यंग्य, सामाजिक अवलोकन, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और रोचक चरित्रों से समृद्ध किया। उनके उपन्यासों के अनुवाद और लोकप्रियता ने यह भी प्रमाणित किया कि भाषा की सीमाएं लोकप्रिय साहित्य के प्रसार को पूरी तरह रोक नहीं सकतीं।

हिन्दी के लोकप्रिय उपन्यासों में रूमानी और सामाजिक कथाओं की अपनी अलग परंपरा रही है। कुशवाहा कांत इस परंपरा के उल्लेखनीय लेखक थे। उनके उपन्यासों में रोमांस, साहस, विद्रोह और क्रांतिकारी चेतना का मेल मिलता है। लाल रेखा उनकी चर्चित रचनाओं में है।

> साहित्य का लोकतंत्र केवल श्रेष्ठ मानी गई पुस्तकों की सूची बनाने से नहीं, उन पाठकों को समझने से बनता है जिनकी रुचियों, अनुभवों और आकांक्षाओं से साहित्य का वास्तविक सामाजिक संसार निर्मित होता है

गुलशन नंदा ने हिन्दी के लोकप्रिय रूमानी उपन्यासों को व्यापक मध्यवर्गीय पाठक वर्ग तक पहुंचाया। प्रेम, पारिवारिक संबंध, सामाजिक प्रतिष्ठा, त्याग, भावनात्मक संघर्ष और नियति के बीच उलझे उनके पात्र पाठकों की भावनात्मक दुनिया से जुड़ते थे। उनके अनेक उपन्यासों पर फिल्में भी बनीं।

ओमप्रकाश शर्मा हिन्दी के लोकप्रिय जासूसी और सामाजिक उपन्यासों के अत्यंत विपुल लेखक थे। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने साढ़े चार सौ से अधिक उपन्यास लिखे। उन्होंने लोकप्रिय उपन्यासों को भारतीय सामाजिक परिवेश से जोड़ने का प्रयास किया।

वेदप्रकाश कांबोज ने 1958 में कंगूरा से अपने उपन्यास लेखन की शुरुआत की। आगे चलकर उन्होंने चार सौ से अधिक उपन्यास लिखे। उनके पात्रों और कथानकों ने जासूसी उपन्यासों के पाठकों के बीच एक स्थायी जगह बनाई।

सुरेंद्र मोहन पाठक इस परंपरा के सबसे महत्वपूर्ण और दीर्घकालिक लेखकों में हैं। उनकी पहली कहानी 57 साल पुराना आदमी 1959 में प्रकाशित हुई और पहला उपन्यास पुराने गुनाह नए गुनाहगार 1963 में सामने आया। 1969 में प्रकाशित ऑपरेशन बुडापेस्ट उनका पहला पूर्ण उपन्यास था।

वेदप्रकाश शर्मा का नाम हिन्दी के लोकप्रिय थ्रिलर साहित्य में विशेष महत्व रखता है। वर्दी वाला गुंडा उनकी सर्वाधिक चर्चित रचनाओं में है। इस उपन्यास की असाधारण बिक्री ने लोकप्रिय साहित्य के बाजार की शक्ति को सामने रखा। वेदप्रकाश शर्मा ने फिल्मों के लिए पटकथा लेखन भी किया।

लुगदी साहित्य के प्रकाशन संसार का एक दिलचस्प पक्ष छद्मनामों का व्यापक इस्तेमाल था। पॉकेट बुक्स के बाजार में कई लेखकों ने अलग-अलग नामों से लिखा। कुछ नाम वास्तविक लेखकों की पहचान बन गए और पाठक उन्हें किसी लोकप्रिय ब्रांड की तरह पहचानने लगे। मख्मूर जालंधरी ने कर्नल रंजीत के नाम से लिखा। रामकुमार भ्रमर ने शेखर नाम से उपन्यास लिखे। आरिफ माहिरवी ने राजवंश, लोकदर्शी और समीर जैसे नामों का उपयोग किया। योगेश मित्तल भी अनेक छद्मनामों से लिखते रहे।

इस प्रवृत्ति के पीछे केवल लेखक की निजी पहचान छिपाने की इच्छा नहीं थी। प्रकाशकों के व्यावसायिक हित, अधिकाधिक पुस्तकें बाजार में उतारने की जरूरत और लोकप्रिय लेखक के नाम का बाजार मूल्य भी इसके कारण थे। कुछ मामलों में एक लोकप्रिय नाम के पीछे अलग-अलग लेखक भी काम करते थे। इससे लेखकीय पहचान और साहित्यिक मौलिकता के प्रश्न पैदा होते हैं। यह लोकप्रिय प्रकाशन उद्योग की उस व्यावसायिक संरचना की ओर संकेत करता है जिसमें लेखक का नाम भी एक बिकाऊ उत्पाद बन सकता था।

इन लेखकों और उपन्यासों की लोकप्रियता के कारणों पर विचार करते हुए कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान खींचती हैं। पहली बात, इन उपन्यासों ने पाठक को कथा के केन्द्र में रखा। दूसरी बात, इन उपन्यासों ने पाठकों की उन इच्छाओं और कल्पनाओं को जगह दी जिन्हें उनके वास्तविक जीवन में पूरा करना संभव नहीं था। तीसरी बात, इन उपन्यासों ने पढ़ने की आदत के विस्तार में भूमिका निभाई। अनेक पाठकों के लिए लोकप्रिय उपन्यास पढ़ने की दुनिया में प्रवेश का पहला माध्यम बने।

फिर भी इनके अंतर्विरोधों की अनदेखी नहीं की जा सकती। बड़ी संख्या में लोकप्रिय उपन्यासों में स्त्री पात्रों को सौंदर्य, प्रेम और पुरुष इच्छा की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया। हिंसा, प्रतिशोध और अपराध का सनसनीखेज चित्रण भी मिलता है।

लोकप्रिय साहित्य और सिनेमा का रिश्ता शुरू से ही निकट रहा है। रूमानी और सामाजिक उपन्यासों ने हिन्दी फिल्मों को कथानक और चरित्र दिए। दूसरी ओर फिल्मों की नाटकीयता, संवाद शैली, प्रेम की कल्पना और दृश्यात्मकता ने लोकप्रिय उपन्यासों को भी प्रभावित किया। कई उपन्यास फिल्मों में रूपांतरित हुए और कई लेखक पटकथा लेखन से जुड़े। इस तरह साहित्य और सिनेमा के बीच एक पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान विकसित हुआ।

मार्क्सवादी दृष्टि से लोकप्रिय साहित्य का अध्ययन करते समय उसके उत्पादन, वितरण और उपभोग की सामाजिक स्थितियों को समझना जरूरी है। लुगदी साहित्य बाजार की मांग से संचालित होता रहा है। प्रकाशक जानते थे कि पाठक किस तरह की कहानी पसंद करते हैं। सफल कथानकों की पुनरावृत्ति, लोकप्रिय पात्रों की श्रृंखलाएं, आकर्षक आवरण और कम कीमत इसी बाजार व्यवस्था के हिस्से थे। लेखक पर लगातार लिखने और पाठक की रुचि बनाए रखने का दबाव भी रहता था।

लेकिन बाजार केवल लुगदी साहित्य में नहीं है। गंभीर साहित्य भी प्रकाशन उद्योग, पुरस्कार, प्रतिष्ठा, संस्थानों, आलोचनात्मक स्वीकृति और सांस्कृतिक पूंजी के तंत्र से प्रभावित होता है।

इलाहाबाद में रहने के दौरान मुझे पता चला था कि एक सुप्रसिद्ध जनवादी कथाकार अपने खाली समय में जासूसी उपन्यास पढ़ा करते थे। यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ था। मेरे मन में यह धारणा थी कि गंभीर साहित्य से जुड़े लेखक शायद इस तरह के उपन्यासों को महत्व नहीं देते होंगे। लेकिन उस प्रसंग ने यह समझने का अवसर दिया कि साहित्यिक रुचि और मनोरंजन की रुचि को अनिवार्य रूप से एक-दूसरे का विरोधी नहीं मानना चाहिए।

लुगदी साहित्य को साहित्य का सर्वोच्च प्रतिमान बनाने की जरूरत नहीं है, लेकिन उसे साहित्य के अध्ययन से बाहर रखने का भी कोई औचित्य नहीं है। उसकी लोकप्रियता में समाज का एक बड़ा हिस्सा बोलता है। उसकी सीमाओं में बाजार का दबाव दिखाई देता है तो उसकी उपलब्धियों में पाठक की जिज्ञासा, कल्पना और मनोरंजन की जरूरत भी।

किसी साहित्य को खारिज करना आसान है, लेकिन यह जानना अधिक कठिन है कि वह लाखों लोगों की जिंदगी में जगह कैसे बनाता है। शायद अब समय आ गया है कि हम इस कठिन काम की शुरुआत करें। ■

बेचैन रूह, बेबाक शख़्सियत और स्मृतियां

'मंटो साब: दोस्तों की नज़र में' का महत्व इसमें है कि यह पाठक को उनकी कहानियों के साथ मनुष्य के निकट ले जाती है

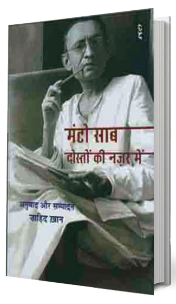

मंटो साब: दोस्तों की नज़र में
अनुवाद और संपादन ज़ाहिद ख़ान
प्रकाशक सेतु प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
मूल्य 310 रुपये (पेपरबैक)

शैलेन्द्र चौहान

सआदत हसन मंटो को समझने के लिए केवल उनकी कहानियां पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उनकी कहानियां उनके रचनाकार व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सामने लाती हैं, लेकिन उस मनुष्य तक पहुंचने के लिए उन लोगों की स्मृतियों से गुजरना भी जरूरी है, जिन्होंने मंटो को निकट से देखा, उनके साथ समय बिताया और उनकी दोस्ती, नाराजगी, आवारगी, बेबाकी, आत्मीयता तथा बेचैनी को महसूस किया। मंटो की शख़्सियत में जितने विरोधाभास थे, उतनी ही जटिलता उनके रचनात्मक संसार में भी दिखाई देती है। वह एक साथ संवेदनशील, जिद्दी, विनोदप्रिय, आत्मसम्मानी, आवेगशील और भीतर से गहरे आहत मनुष्य थे। उनकी बाहरी बेफिक्री के पीछे एक ऐसा व्यक्ति मौजूद था जो अपने समय, समाज और स्वयं अपने जीवन से लगातार संघर्ष कर रहा था।

ज़ाहिद ख़ान द्वारा संपादित पुस्तक 'मंटो साब : दोस्तों की नज़र में' में शामिल संस्मरणों और टिप्पणियों को पढ़ते हुए मंटो की यही बहुआयामी छवि उभरती है। पुस्तक की भूमिका—जिसे ज़ाहिद ख़ान ने 'ताकि मंटो की मुकम्मल शख़्सियत उभरकर सामने आए' शीर्षक दिया है—की यह मंशा इन तमाम स्मृतियों के माध्यम से पूरी होती दिखाई देती है। किसी लेखक को उसके समकालीनों और मित्रों की निगाह से देखने का अपना महत्व है। विशेषकर मंटो जैसे लेखक के मामले में, जिनके जीवन और लेखन के बीच गहरा अंतर्विरोध और निरंतर तनाव मौजूद रहा, ये स्मृतियां उनके व्यक्तित्व को समझने के नए रास्ते खोलती हैं। इन संस्मरणों की विशेषता यह है कि वे मंटो को किसी एक प्रशंसात्मक या नकारात्मक छवि में सीमित नहीं करते, बल्कि उनके व्यक्तित्व के अनेक रंगों और अंतर्विरोधों को सामने लाते हैं।

मंटो के बारे में प्रचलित धारणाओं में अक्सर उनकी शराबखोरी, विवादप्रियता, अश्लीलता के मुकदमों और तीखी भाषा का उल्लेख प्रमुखता से होता है। उनके व्यक्तित्व के इन पक्षों को नकारा नहीं जा सकता, लेकिन केवल इन्हीं के आधार पर उन्हें समझने की कोशिश उनके रचनाकार की व्यापकता को सीमित कर देती है। वह जिस समाज में रहते थे, उसकी नैतिकता, राजनीतिक पाखंड और मानवीय क्रूरता को बहुत करीब से पहचानते थे। उनकी बेबाकी इसी पहचान से पैदा हुई थी। वह अपने आसपास की दुनिया को सुविधाजनक नैतिक खांचों में बांटकर देखने के अभ्यस्त नहीं थे। उनके लिए मनुष्य का अनुभव किसी भी सामाजिक प्रतिष्ठा, धार्मिक पहचान या नैतिक उपदेश से अधिक महत्त्वपूर्ण था।

पुस्तक के अनुक्रम पर नजर डालें तो 'ब-क़लम मंटो' और ज़ाहिद ख़ान की भूमिका के बाद कृष्ण चन्दर, मुहम्मद तुफ़ैल, शाहिद अहमद देहलवी, मुहम्मद असदउल्लाह, इस्मत चुग़ताई, बलवन्त गार्गी, नरेश कुमार शाद, अहमद नदीम क़ासमी, शोरिश काश्मीरी, मिर्ज़ा अदीब, नसीर अनवर, मुहम्मद ख़ालिद अख़्तर, राजा मेहदी अली ख़ान, अली सरदार जाफ़री, इब्राहीम जलीस और हमीद अख़्तर जैसे लेखकों के संस्मरण मंटो के जीवन के अलग-अलग कोण खोलते हैं। इन स्मृतियों की खूबी यह है कि एक ही व्यक्ति के बारे में अलग-अलग लोगों के अनुभवों में समानता के साथ-साथ पर्याप्त भिन्नताएँ भी दिखाई देती हैं।

इन संस्मरणों को एक साथ पढ़ने पर यह भी स्पष्ट होता है कि मंटो के मित्र उन्हें हमेशा एक ही तरह से नहीं देखते थे। किसी के लिए वह आत्मीय और प्यारे दोस्त थे, किसी के लिए असहनीय रूप से जिद्दी और बदजुबान, तो किसी के लिए अपने समय के सबसे बड़े कहानीकार। यह विविधता पुस्तक की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी उपलब्धि है।

मंटो का जीवन किसी व्यवस्थित और सुविधाजनक साहित्यिक जीवन का उदाहरण नहीं था। आर्थिक अस्थिरता, पारिवारिक जिम्मेदारियां, शराब की लत, सामाजिक और साहित्यिक विवाद, विभाजन की त्रासदी तथा पाकिस्तान में उनके विरुद्ध चले अश्लीलता के मुकदमों ने उन्हें लगातार परेशान किया। लेकिन इन सबके बावजूद उन्होंने अपने समय की सच्चाइयों से मुंह नहीं मोड़ा। वह उन लेखकों में नहीं थे जो समाज की स्वीकृति पाने के लिए अपनी दृष्टि और अभिव्यक्ति से समझौता कर लें।

विभाजन मंटो के जीवन और लेखन का निर्णायक मोड़ था। बंबई में फिल्मी दुनिया से जुड़ा उनका जीवन, मित्रों का दायरा और साहित्यिक परिवेश अचानक पीछे छूट गया। पाकिस्तान जाना उनके लिए केवल एक देश से दूसरे देश में जाना नहीं था, बल्कि एक ऐसी सांस्कृतिक दुनिया से विस्थापित होना था जिसमें उनकी रचनात्मक पहचान विकसित हुई थी। जिस शहर में उन्होंने अपने मित्र बनाए, अपनी रचनात्मक संभावनाओं को विस्तार दिया और जीवन के अनेक अनुभव हासिल किए, उससे अलग होना उनके लिए गहरा आघात था। विभाजन ने केवल भौगोलिक सीमाएं नहीं बदलीं, उसने मनुष्यों के बीच संबंधों, विश्वासों और सांस्कृतिक साझेदारी को भी तोड़ दिया।

पाकिस्तान में उनके विरुद्ध चले अश्लीलता के मुकदमे भी उनकी रचनात्मक स्वतंत्रता के संघर्ष का हिस्सा थे। मंटो पर आरोप था कि उनकी कहानियां समाज की नैतिकता के विरुद्ध हैं। लेकिन वह बार-बार यह सवाल उठाते थे कि जब समाज में अश्लील और अमानवीय घटनाएं घट रही हों, तब उन्हें लिखने वाला लेखक अश्लील कैसे हो सकता है? उनकी दृष्टि में लेखक का काम वास्तविकता को सजाकर प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उसे उसकी पूरी जटिलता और कुरूपता के साथ सामने लाना है। वे जानते थे कि उनकी रचनाएं असुविधाजनक सवाल पैदा करती हैं, लेकिन पाठकों को असुविधा से बचाने के लिए वह अपनी अभिव्यक्ति को बदलने के पक्ष में नहीं थे।

मंटो को समझने में उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष का महत्त्व इसलिए भी है कि उनकी कहानियों में दिखाई देने वाली निर्ममता दरअसल मनुष्य के प्रति उनकी गहरी संवेदना से पैदा होती है। वह जीवन की कुरूपताओं को सुंदर शब्दों और नैतिक उपदेशों से ढकना नहीं चाहते थे। उनके यहां यथार्थ का चित्रण किसी सामाजिक सुधारक की तरह उपदेश देने के लिए नहीं होता। वह अपने पात्रों को उनकी परिस्थितियों में रखते हैं और पाठक को उन परिस्थितियों के भीतर झांकने के लिए बाध्य करते हैं।

'टोबा टेक सिंह' का बिशन सिंह विभाजन की बेतुकी राजनीति और मनुष्य की पहचान के संकट का ऐसा प्रतीक है, जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। दो देशों के बीच खिंची सीमा और लोगों के स्थानांतरण की सरकारी कवायद के बीच एक मानसिक अस्पताल का व्यक्ति अपनी जगह और पहचान को लेकर खड़ा है। वह यह नहीं समझ पाता कि उसका देश आखिर कहां है। उसकी स्थिति उस राजनीतिक विवेक पर प्रश्नचिह्न लगाती है जो मनुष्यों के जीवन और संबंधों को प्रशासनिक फैसलों में बदल देता है। बिशन सिंह का प्रश्न केवल अपने ठिकाने का प्रश्न नहीं है। वह उस पूरी व्यवस्था की विडंबना को सामने लाता है जिसमें देश का विभाजन हो जाता है, लेकिन मनुष्य की स्मृतियां, उसकी पहचान और उसके पुराने संबंध किसी नई सीमा को स्वीकार नहीं कर पाते।

मंटो की रचनात्मक दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह समाज द्वारा हाशिये पर धकेले गए लोगों को मनुष्य की गरिमा के साथ देखते हैं। वेश्याएं, अपराधी, विस्थापित, पागलखाने के लोग और सामाजिक रूप से उपेक्षित व्यक्ति उनकी कहानियों में केवल कथानक के पात्र नहीं हैं। उनके माध्यम से मंटो सभ्य समाज के उस चेहरे को सामने लाते हैं, जो अपनी नैतिक श्रेष्ठता के दावों के बावजूद भीतर से क्रूर और संवेदनहीन है।

ज़ाहिद ख़ान की यह पुस्तक मंटो को किसी एक स्थापित छवि में कैद नहीं करती। अलग-अलग मित्रों और समकालीनों की स्मृतियां मिलकर मंटो की एक ऐसी सजीव तस्वीर बनाती हैं, जो किसी एक जीवनी से संभव नहीं थी।

इन संस्मरणों को पढ़ते हुए यह भी महसूस होता है कि किसी लेखक की रचनात्मक उपलब्धियों और उसके निजी जीवन को पूरी तरह अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। मंटो के निजी जीवन में मौजूद अस्थिरता और अंतर्विरोधों को उनकी कहानियों का एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता, लेकिन उनके अनुभवों से अलग करके उनकी संवेदना को भी नहीं समझा जा सकता। उनके मित्रों की स्मृतियां इस संबंध को अधिक मानवीय धरातल पर समझने का अवसर देती हैं।

मंटो आज भी हमारे बीच केवल एक महान कहानीकार के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी बेचैन रूह के रूप में उपस्थित हैं, जिसने अपने समय की निर्मम सच्चाइयों को देखने और लिखने का साहस किया।

मंटो की प्रासंगिकता केवल इसलिए नहीं है कि उन्होंने अपने समय की कुछ अविस्मरणीय कहानियां लिखीं। उनकी प्रासंगिकता इस बात में भी है कि उन्होंने मनुष्य को उसकी सामाजिक पहचान, धार्मिक संबद्धता और नैतिक प्रतिष्ठा से अलग करके देखने का साहस किया। उन्होंने उन जीवन स्थितियों को साहित्य का विषय बनाया जिन्हें समाज देखना तो चाहता था, लेकिन स्वीकार नहीं करना चाहता था।

इस पुस्तक का महत्व भी इसी में है कि यह पाठक को मंटो की कहानियों के साथ-साथ उस मनुष्य के निकट ले जाती है, जिसने उन कहानियों को संभव बनाया। मित्रों की स्मृतियों में मौजूद मंटो कहीं हंसते हैं, कहीं झुंझलाते हैं, कहीं बहस करते हैं और कहीं अपनी ही जिंदगी से पराजित दिखाई देते हैं। इन तमाम छवियों के बीच एक चीज लगातार बनी रहती है—उनकी बेचैन दृष्टि और सच कहने का साहस। शायद यही कारण है कि मंटो अपने समय से आगे निकलकर आज भी हमारे समकालीन बने हुए हैं। ■

> मंटो की प्रासंगिकता इस बात में है कि उन्होंने मनुष्य को उसकी सामाजिक पहचान, धार्मिक संबद्धता और नैतिक प्रतिष्ठा से अलग करके देखने का साहस किया